मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 40 ● वर्ष 5 ● अंक 1 ● मार्च 2015 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

दूसरा उत्तराखंड बनने की राह पर हैं हिमाचल प्रदेश 5

भगतसिंह : स्मृति से प्रेरणा लो, विचारों से दिशा लो! 8–9

कॉमरेड : एक कहानी – मक्सिम गोर्की 14–15

केन्द्रीय बजट 2015–2016 : जनता की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने की जिम्मेदारी से पल्ला झाड़कर थैलीशाहों की थैलियाँ भरने का पूरा इंतज़ाम

सम्पादक मण्डल

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार ने पिछले साल सत्ता में आने के फौरन बाद एक अन्तरिम बजट प्रस्तुत किया था जिसमें हालाँकि उसने इस बात के स्पष्ट संकेत दे दिये थे कि ''अच्छे दिनों'' से उसका तात्पर्य दरअसल पूँजीपतियों और सेठ-व्यापारियों के अच्छे दिनों से था, लेकिन फिर भी पूँजीपति वर्ग और उसकी चाकरी करने वाले अर्थशास्त्री, पत्रकार और बुद्धिजीवी उस अन्तरिम बजट में सरकार द्वारा थैलीशाहों की थैलियाँ भरने के लिए की गई घोषणाओं से संतुष्ट नहीं थे। नयी सरकार के पहले नौ महीनों के दौरान पूँजीपति वर्ग और उसके लग्गू-भग्गू लगातार इस बात का दबाव बनाते रहे कि देश में निवेश के लिए अनुकूल माहौल बनाने के लिए सरकार कॉरपोरेट धनपशुओं के लिए प्राकृतिक संसाधनों और श्रमशक्ति की लूट का खुला चारागाह मुहैया करा दे और उनके मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए उनपर लगने वाले करों में कटौती करे तथा उसकी भरपाई आम जनता पर करों को बोझ लादकर करे। पिछली 28 फरवरी को वित्तमंत्री अरुण जेटली द्वारा प्रस्तुत केन्द्रीय बजट में सरकार ने जहाँ एक ओर आम जनता पर करों का बोझ बढ़ाया और शिक्षा-स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरतों में भी कटौती की वहीं दूसरी ओर पूँजीपतियों और सेठ-व्यापारियों को थोक भाव में अच्छे दिनों की सौगात दी। इस सौगात को पाकर इन लुटेरों और उनके चाकरों की खुशी का ठिकाना नहीं था और वे टीवी और अखबारों में मोदी सरकार की तारीफ़ के पुल बाँधते नहीं अघा रहे थे और कइयों ने तो इस बजट को 1997 के 'ड्रीम बजट' से किया जिसमें तत्कालीन वित्तमंत्री चिदंबरम ने कॉरपोरेट धनपशुओं को तोहफ़े की बौछार की थी।

हर बजट की तरह मीडिया में इस बजट की चर्चाओं में पूँजीपतियों के टुकड़खोर बुद्धिजीवी बढ़ते राजकोषीय घाटे (फिस्कल डेफिसिट) पर छाती पीटते नज़र आये। बढ़ते हुए राजकोषीय घाटे पर छाती पीटने के पीछे इन लग्गू-भग्गुओं का मक़सद यह होता है कि राज्य जनता को खाद्य, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने की जिम्मेदारी से भी हाथ खींच ले। ये लग्गू-भग्गू कभी भी हर साल बजट में पूँजीपतियों को दी जाने वाली लाखों करोड़ रुपये की सब्सिडी को कम करने को लेकर चूँ तक नहीं करते, बल्कि उल्टा उसको और बढ़ाने के के लिए ऊटपटांग दलीलें ईजाद करते हैं। ऐसी ही दलीलों को सिर आँखों पर रखते हुए अरुण जेटली ने इस बार बजट में कॉरपोरेट घरानों की मुँह मांगी मुराद पूरी कर दी जब उन्होंने कॉरपोरेट करों की दर 30 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत करने के सरकार के फैसले का ऐलान किया। यही नहीं सरकार ने सम्पत्तिवानों पर लगने वाले सम्पदा कर (वेल्थ टैक्स) को तो पूरी तरह ख़त्म करने की घोषणा करके सम्पत्तिशाली तबके के लिए सोने पर सुहागा का काम किया।

धनपशुओं पर लगने वाले करों में कटौती करने का नतीजा यह होगा कि अगले वित्तीय वर्ष में सरकार को प्रत्यक्ष करों के रूप में होने वाली आय में लगभग 8,315 करोड़ रुपये की कमी आयेगी। इसकी भरपाई करने के लिए सरकार ने इस बजट में अप्रत्यक्ष करों में 23,383 करोड़ रुपये की बढ़ोत्तरी करने की घोषणा भी की। ग़ौरतलब है कि अप्रत्यक्ष करों से सबसे ज़्यादा नुकसान आम मेहनतकश जनता को होता है। इसका कारण यह है कि यह प्रत्यक्ष करों की भाँति किसी व्यक्ति की कर देने की क्षमता के आधार पर होने की बजाय अप्रत्यक्ष कर हर किसी पर एकसमान रूप से लगता है क्योंकि बाज़ार में बिकने वाली कोई चीज़ हर किसी को एक ही दाम पर मिलती है, यानी एक अरबपति सेठ और दिहाड़ी मज़दूर पर लगने वाला अप्रत्यक्ष कर एक ही होता है। यही नहीं, सरकार ने सेवा कर को भी 12.6 प्रतिशत से बढ़ाकर 14 प्रतिशत करने का ऐलान किया जिसका बोझ आम आदमी को ही उठाना पड़ेगा। पेट्रोल और डीज़ल के आयात शुल्क में भी बढ़ोत्तरी की गई जो उपभोक्ताओं के ही मत्थे मढ़ा जायेगा। इस फैसले के बाद पेट्रोल और डीज़ल के दाम तुरन्त बढ़ गए। ग़ौरतलब है कि अन्तरराष्ट्रीय तेल बाज़ार में कच्चे तेल की कीमतों में भारी गिरावट के बावजूद पेट्रोल और डीज़ल के दाम उतने नहीं गिरे जितने गिरने चाहिए थे। पेट्रोल और डीज़ल पर आयात शुल्क के बढ़ने के बाद तो आम जनता को जो अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की कीमतों के गिरने से जो थोड़ी-बहुत राहत मिलती दिख रही थी वह भी भी वापस ले ली गई। अपने कॉरपोरेट स्वामियों को खुश करने में दिलोजान से जुटी मोदी सरकार ने इस बजट में मध्यवर्ग, जिसने पिछले लोकसभा चुनावों में बड़ी संख्या में भाजपा को वोट दिया था, को भी करों में कोई रियायत नहीं दी । किसानों के हितों की हिफ़ाजत करने का दावा करने वाली मोदी सरकार

(पेज 6 पर जारी)

भारत में जन्म लेने वाले अधिकतर बच्चे और उन्हें जन्म देने वाली गर्भवती माँएँ कुपोषित

अपने बच्चों और माँओं के साथ ऐसे बेरहम समाज को जल्द से जल्द बदल डालो!

विकास के लम्बे-चौड़े दावों और 'बेटी बचाओ' जैसे सरकारी नुमायशी अभियानों के बावजूद एक नंगी सच्चाई यह है कि भारत में जन्म लेने वाले अधिकतर बच्चे और उन्हें जन्म देने वाली गर्भवती माँएँ कुपोषित होती हैं। यहाँ तक कि उनकी स्थिति कांगो, सोमालिया और जिम्बाब्वे जैसे ग़रीब अफ्रीकी देशों के बच्चों और गर्भवती स्त्रियों से भी बदतर है। आमिर खान जैसे अभिनेताओं के मुँह से कुपोषण दूर करने का उपदेश सुनाने पर सरकार करोड़ों रुपये खर्च कर सकती है लेकिन कुपोषण और भुखमरी के बुनियादी कारणों को दूर करने के लिए वह कुछ नहीं कर सकती।

हल ही में प्रिंस्टन युनिवर्सिटी की ओर से दुनियाभर में किये गये एक सर्वेक्षण के मुताबिक अफ्रीकी देशों में औसतन 16.5 प्रतिशत माँएँ कुपोषित हैं जबकि भारत में 42 प्रतिशत माँएँ कुपोषण का शिकार हैं। 90 प्रतिशत किशोरियाँ खून की कमी या एनीमिया से पीड़ित होती हैं।

इससे पहले आये भारत सरकार के आँकड़ों के अनुसार, देश की 75 फ़ीसदी माँओं को पर्याप्त पोषणयुक्त भोजन नहीं मिलता। विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनिसेफ, यू.एन.एफ़.पी.ए. और विश्व बैंक द्वारा तैयार की गयी 'मैटर्नल मॉर्टेलिटी रिपोर्ट' (2007) के अनुसार, पूरी दुनिया में गर्भावस्था या प्रसव के दौरान हर साल 5.36 लाख स्त्रियाँ मर जाती हैं। इनमें से 1.17 लाख मौतें सिर्फ़ भारत में होती हैं। भारत में प्रसव के दौरान 1 लाख में से 450 स्त्रियों की मौत हो जाती है। गर्भावस्था और प्रसव के दौरान मृत्यु के 47 फ़ीसदी मामलों में कारण ख़ून की कमी और अत्यधिक रक्तस्राव होता है। रिपोर्ट के अनुसार, भारत सहित सभी विकासशील देशों में गर्भवती और जच्चगी के तुरन्त बाद होने वाली स्त्रियों की मौतों के मामले में 99 फ़ीसदी मौतें ग़रीबी, भूख और बीमारी के चलते होती हैं। भारत के स्वास्थ्य मन्त्रालय द्वारा 2007 में जारी रिपोर्ट 'एन.एफ़.एच.एस.-III' के अनुसार, ग़रीबी के कारण समुचित डॉक्टरी देखभाल का अभाव भारत में माँओं की ऊँची मृत्युदर का मुख्य कारण है। 2007 से पहले के आठ वर्षों के दौरान बच्चों को जन्म देने वाली 25 प्रतिशत स्त्रियों को प्रसव के पूर्व या उसके बाद डॉक्टरी देखभाल की कोई सुविधा नसीब नहीं हुई। उक्त रिपोर्ट के अनुसार भारत में अभी भी 60 प्रतिशत प्रसव घर में ही कराये जाते हैं, 37 प्रतिशत मामलों में परम्परागत दाइयाँ और 16 प्रतिशत मामलों में रिश्तेदार या अप्रशिक्षित लोग प्रसव के समय माँ की सहायता व देखभाल करते हैं।

भारतीय समाज में व्याप्त पुरुषवादी मानसिकता के कारण

पेज 11 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मज़दूर बिगुल पढ़कर एक क्लास पूरा हो जाता है

मज़दूर बिगुल का तमाम सामग्री पठनीय है। संशोधनवाद के बारे में इतने बेहतरीन आज के वक्त में ज़रूरी आलेख पढ़कर बेहद खुशी हुई। आगे और ऐसे आलेख पढ़ने की आशा करूँगा। बिगुल के तमाम लेखकों कार्यकर्ताओं को मेरी ओर से जोहार है।

आज के मौजूदा परिस्थिति में बिगुल राजनीतिक रूप से सचेत करता है। बिगुल पढ़कर एक क्लास पूरा हो जाता है। मेरे गाँव का लायब्रेरी भवन का इस वर्ष निर्माण होने जा रहा है। अब अपना भवन प्रेमचंद पुस्तकालय का होगा। बिगुल का स्थायी सदस्य बन जाने का प्रयास है। मेरा गाँव कोलियरी एरिया में है। यहाँ मज़दूर आन्दोलन का दौर 1970 के दशक से देखता आ रहा हूँ। लायब्रेरी गाँवों का और आन्दोलनों का प्रतिनिधि के बतौर स्थापित होगा। आने वाली पीढ़ी के लिए एक रौशनी होगी। मैं दिखाऊँगा आपको अपना गाँव।

मैं जनसंस्कृति मंच का राष्ट्रीय पार्षद हूँ। आपका बिगुल मैं क्यों पढ़ता हूँ। दरअसल बिगुल में कभी-कभी आलोचना वामपंथियों पर जमकर होती है तो मैं गुस्साता नहीं हूँ बल्कि स्वतंत्र आलोचना आँखें खोलने लायक होती हैं।

हर कोई अपने तेवर में होते हैं। इसलिए अपने कमियों को भूल जाते हैं। जब कोई दर्शक के जैसा इन कमियों को दिखाता है तो मजा आता है। महसूस होता है। आत्मआलोचना के लिए प्रेरित करता है। आपलोगों में भी एक शालीनता आ जायेगी। धीरज से आगे बढ़ेंगे। व्यापक दृष्टिकोण लेकर जब आगे बढ़ेंगे तो निश्छल होकर बोलेंगे। आपकी शुरुआत स्वागतयोग्य है। कार्यशैली सचमुच अभिवादन करने लायक है।

प्राय: लेखकों में भी एक तेवर होता है। कभी-कभी अपनी विनम्रता भी खो देते हैं। बहुत उदारवादी होना तो ठीक नहीं किन्तु परिस्थिति और मजबूरी को नहीं देखना भी भूल है। भारत के माओवादियों को ही देखिये अहमता में इतने दूर चले गये कि वे समझते हैं कि हमसे क्रान्तिकारी दूसरा कोई नहीं। अब धीरे-धीरे राजनीति पीछे हो गयी और बंदूक की अहमता आगे बढ़ गई। इतना कि अपने समकक्ष वामपंथियों को ही हत्या करने लगे। साथ ही आम आदमी को तो सबसे अधिक इनके द्वारा मार खानी पड़ी। ये इस बात को भी भूल गये कि अन्तिम समय में भी माओ कहा करते थे कि हम अभी कम्युनिस्ट बन रहे हैं। इसलिए सांस्कृतिक क्रान्ति इनका सबसे विकल और सहज कल्पना के रूप में आया। मैं आपके आगे बढ़े हुए क़दम का क़ायल हूँ। कोई रास्ता तो दिखाएँ। बस यूँ ही कुछ नहीं कह दिया। आपकी जंग यानी संघर्ष पर सबकी नज़र है।

- कालेश्वर
हज़ारीबाग, झारखण्ड

मज़दूरों की समस्या का समाधान नग वाली अँगूठी से नहीं बल्कि संघर्ष से होगा

हम लोग सुन्दर नगर चौक लुधियाना में मज़दूर बिगुल का प्रचार कर रहे थे। वहाँ पर कार में से माइक लगाकर कहा जा रहा था कि नग वाली अँगूठी जो बाज़ार में 1500 रुपये में मिलती है वो हम 100 रुपये में दे रहे हैं। इसे अपनी परेशानियों से छुटकारा मिल जाता है। जैसे ग्रहक्लेश, शनि का ग्रह, मंगल का ग्रह, तुम पैसा कमाते हो पर बचता नहीं, मानसिक परेशानी ये सब कुछ करने के लिए राशि के नग वाली अँगूठी पहनो आप लोगों की परेशानियाँ दूर हो जायेगी।

आज विज्ञान से साबित कर दिया कि ग्रह क्यों और कैसे लगते हैं। धरती, सूरज का परिक्रमा लगाते हैं। धरती का परिक्रमा चाँद करता हैं उसी परिक्रमा के बीच में कोई ग्रह सूरज की रोशनी रोक देता है। तो पण्डित, पुरोहित, ओझा, सोखा लोगों को गुमराह बनाने लगते हैं। कहते हैं कि ग्रह शनि नाराज हो गया इसके लिए हवन कराओ और सत्रह प्रकार के सामान लाकर दो! पैसा कमाने वाली बात पर तो बस इतना ही कहेंगे कि मज़दूर तो बारह-चौदह घण्टे फैक्टरियों में काम करता है तब भी उसे उतना वेतन नहीं मिलता जिससे उसका और उसके घर का खर्च चल सके जितना वह कमाता है।

उसने फैक्टरी से तनख्वाह उठायी और राशन, लाला, कमरा मालिक, सब्जीवाला उसे तुरन्त लेता है। अगर वह उनकी नज़रों से ओझल होना चाहे तो नहीं होने देंगे। उसे तुरन्त पकड़ लेंगे। और उसकी जेब खाली करा लेंगे, इसी कारण उसकी मानसिक परेशानी बढ़ती है।

इन सबकी परेशानियों को दूर करने के लिए हमें मज़दूर-मेहनतकशों को एकजुट होकर अपने रोजगार स्वरूप शिक्षा, आवास और भी हमारे अन्य अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा। नग वाली अँगूठी पहनने से हमारे जीवन और हालातों पर राई-रत्ती भर भी फर्क नहीं पड़ेगा। और हम सोचते -सोचते बूढ़े होकर मर जायेंगे।

मानव इतिहास बताता है कि दुनिया में हर चीज बदलती है। हर चीज में परिवर्तन होता है। लेकिन चीजों को बदलने के लिए विज्ञान के सहारे की जरूरत पड़ती है इसीलिए हमें विज्ञान को जानना होगा और समझना होगा और उस पर अमल करना होगा।

- रामसेवक, विशाल,
लुधियाना

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन - 09971158783
गाज़ियाबाद-नोएडा : (तपीश) 9654077902
गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445
लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन - 09646150249 ● चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188
लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन - 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555
गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन - 08738863640
इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369 ● पटना : (विशाल) 09576203525
खगड़िया (बिहार) : (नवीन) 7091862877
सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन - 09813192365
मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन - 09619039793

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/-

मुख्यमंत्री केजरीवाल से मिलने गये मेट्रो मज़दूरों पर पुलिस की लाठी

पिछली 3 मार्च को दिल्ली मेट्रो रेल कॉरपोरेशन के ठेका कर्मचारियों ने अपनी माँगों को लेकर दिल्ली सचिवालय पर प्रदर्शन किया।

'दिल्ली मेट्रो रेल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' के नेतृत्व में बड़ी संख्या में मेट्रो के ठेका कर्मचारी मुख्यमंत्री को ज्ञापन सौपने के लिए दिल्ली सचिवालय पहुँचे। डीएमआरसी में सभी टॉम ऑपरेटर, हाउसकीपर, सिक्योरिटी गार्ड, एयरपोर्ट लाइन का तकनिकी स्टाफ, ट्रैक ब्वॉय आदि नियमित प्रकृति का कार्य करने के बावजूद ठेके पर रखे जाते हैं। दिल्ली ही नहीं बल्कि भारत की शान मानी जानेवाली दिल्ली मेट्रो इन ठेका कर्मचारियों को अपना कर्मचारी न मानकर ठेका कम्पनियों जेएमडी, ट्रिग, एटूजेड, बेदी एण्ड बेदी, एनसीईएस आदि का कर्मचारी बताती है, जबकि भारत का श्रम कानून स्पष्ट तौर पर यह बताता है कि प्रधान नियोक्ता स्वयं डीएमआरसी है। ठेका कम्पनियाँ भर्ती के समय सिक्योरिटी राशि के नाम पर वर्कर्स से 20-30 हजार रुपये वसूलती हैं और 'रिकॉल' के नाम पर मनमाने तरीके से काम से निकाल दिया जाता है। ज़्यादातर वर्कर्स को न्यूनतम मज़दूरी, ईएसआई, पीएफ की सुविधाएँ नहीं मिलती हैं। यहाँ श्रम कानूनों का सरेआम उल्लंघन किया जाता है। 'दिल्ली मेट्रो रेल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' की शिवानी ने कहा कि हम यहाँ इसलिए आये हैं कि मुख्यमंत्री ने चुनावों के समय हमसे वायदा किया था कि दिल्ली में नियमित प्रकृति के कार्य में ठेका प्रथा को खत्म किया जाएगा। पिछली बार भी हमने श्री केजरीवाल से अपनी समस्या बतायी थी लेकिन इस बाबत कोई कार्रवाई नहीं हो सकी, लेकिन इस बार पूर्ण बहुमत की सरकार आने के बाद उनके पास हमारी समस्या पर ध्यान न देने का कोई कारण नहीं है। दिल्ली की मजदूर आबादी ने केजरीवाल जी को रिकॉर्ड तोड़ ऐतिहासिक जीत हासिल करवायी है और दिल्ली में साठ लाख ठेका कर्मचारी हैं। जाहिर है, मजदूर आबादी का बड़ा हिस्सा ठेका मजदूरों का है और हमारे ही समर्थन से यह सरकार बनी है।

मज़दूरों की कुछ माँगें तो तुरन्त पूरी की जा सकती हैं इसलिए उनमें देरी करने का कोई कारण नहीं हो सकता है। मिसाल के तौर पर, दिल्ली राज्य में नियमित प्रकृति के कार्य पर ठेका मजदूरों को रखने पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है और इस बारे में तत्काल एक विधेयक पारित किया जा सकता है।

मज़दूरों के पाँच सदस्यीय प्रतिनिधिमण्डल द्वारा ज्ञापन को स्वीकार करने से सरकार के प्रतिनिधि द्वारा इन्कार कर दिया गया, इस पर वर्कर्स ने आगे बढ़ने की कोशिश की तो पुलिस द्वारा जोर-जबरदस्ती की गयी, लाठी चार्ज किया गया जिसके कारण कई साथियों को चोट पहुँची। मगर मजदूर दिल्ली सचिवालय के गेट की तरफ बढ़ते रहे। घबराहट में सरकार को अपना नुमाइन्दा भेजना पड़ा। इसके बाद प्रतिनिधिमण्डल ने श्रम मन्त्री के निजी सचिव से मिलकर अपनी बात दिल्ली सरकार तक पहुँचायी।

मेट्रो रेल के कर्मचारियों द्वारा मुख्यमंत्री को जो ज्ञापन सौंपा गया उनमें निम्नलिखित माँगें सम्मिलित हैं-

1. दिल्ली मेट्रो रेल कारपोरेशन में नियमित प्रकृति का काम करनेवाले सभी ठेका कर्मचारियों को तत्काल स्थायी किया जाये और उन्हें नियुक्ति पत्र दिया जाये, जिनमें कि टॉम ऑपरेटर, हाउसकीपर, सिक्योरिटी गार्ड प्रमुख हैं। इस कदम को प्रभावी बनाने के लिए दिल्ली राज्य स्तर पर नियमित प्रकृति के कार्य पर ठेका प्रथा को निषिद्ध बनाने वाले एक विधेयक को 'आप' की भारी बहुमत वाली सरकार तत्काल पारित कराये।

2. ठेका कम्पनियों द्वारा मनमानें तरीके से मजदूरों-कर्मचारियों को ''रिकॉल'' के नाम पर काम से निकालने पर रोक लगायी जाये, ''रिकॉल'' किये गये सभी मजदूरों को वापस काम पर लिया जाय और इसका उल्लंघन करने वाली ठेका कम्पनियों पर सख्त कार्रवाई की जाये।

3. ''सिक्योरिटी राशि'' के नाम पर मजदूरों से लिये जानेवाले 20-30 हजार रुपये वापस करवाये जायें और इस नंगे भ्रष्टाचार पर तत्काल रोक लगायी जाये।

4. सभी डीएमआरसी कर्मचारियों को न्यूनतम मजदूरी, ई.एस.आई., पी.एफ. आदि श्रम कानूनों से मिलने वाली सुविधाएँ तत्काल सुनिष्चित की जाय।

5. डीएमआरसी और उनके तहत कार्यरत सभी ठेका कम्पनियों का और उनके बीच हुए करारों व लेन-देन का 'कैग' द्वारा तत्काल ऑडिट कराया जाय।

– बिगुल संवाददाता

काम के ज्यादा दबाव की वजह से दिमागी संतुलन खोता मज़दूर

मैं बलराम मौर्या, देवरिया उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूँ, काम की तलाश में मैं पिछले साल गुडगाँव आया था। 2-3 कंपनियों में काम किया, मगर कम्पनियों के अंदर ख़राब माहौल के चलते किसी कम्पनी में टिक नहीं पाया। यहाँ मुझे लगातार ज़लील होना पड़ता था। मैं लड़-झगड़ कर निकल गया या निकाल दिया गया। 5-6 महीने यही हाल रहा। आखिरकार मजबूरन थक हारकर (क्योंकि कही न कही तो काम करना ही हैं) मैंने स्थायीरूप में गुडगाँव की एक कपड़ा फैक्ट्री में बतौर हेल्पर 3 जनवरी 2014 को काम पकड़ा और पिछले साल तक मैं उसी में काम करता रहा। ई.इस.आई काट कर मुझे करीब 4800 रुपये मिलते थे मगर ओवरटाइम व नाईट बहुत लगानी पड़ती थी (क्योंकि सभी मज़दूरों को शादी ब्याह के चक्कर में गाँव जाना पड़ता हैं) । पिछले साल की गर्मी में काम का इतना अधिक बोझ था कि सोने का कोई ठिकाना नहीं था,न ही खाने पीने का कोई ढंग का बंदोबस्त और कंपनी के अंदर एक दम घोटू माहौल था। जिसके चलते मेरी तबियत बहुत बिगड़ गयी थी। इसी दबाव के चलते मेरा दिमागी संतुलन भी बिगड़ गया। मैंने ई.इस.आई अस्पताल में दवाई करवाई। मगर ई.इस.आई में सही इलाज नहीं हुआ जिसके चलते मुझे कोई आराम नहीं पहुँचा। उसके बाद मैंने सरकारी अस्पताल में दिखाया जहाँ मुझे थाड़ा आराम मिला और मैं थोड़ा स्वस्थ महसूस कर रहा हूँ। बीमारी की वजह से मैं कई दिन डयूटी नहीं जा सका और जब मैंने ई.इस.आई से पैसे निकालने की कोशिश की तो मुझे छुट्टी का कोई पैसा नहीं मिला। मैंने मैनेजर से गुहार लगाई तो मैनेजर गाली गलौच पर उतर आया और मुझे काम से निकाल दिया। यह बात बीते समय हो गया है परन्तु यह बताना इसलिए ज़रूरी था कि मेरे जैसे अन्य मज़दूर भी अकेले अकेले लड़ते हुए इसी तरह काम से निकाल दिए जाते हैं। मज़दूर बिगुल अखबार पढ़कर मुझे समझ में आया कि मैं अकेला मज़दूर नहीं हूँ जिसके साथ इस तरह की घटनाएँ होती हैं । अपने अखबार के ज़रिए हम लोग एक दूसरे तक अपनी बात पहुँचा सकते हैं और यही से अपनी ताकत भी खड़ी कर सकते हैं।

- बलराम मौर्या, गुडगाँव

सलूजा धागा मिल में मशीन से कटकर एक मजदूर की मौत

लुधियाना की सलूजा धागा मिल में 14 फरवरी की रात को एक मजदूर दिनेश रावत की मशीन से कटकर मौत हो गई। दिनेश रावत जो कि उत्तराखण्ड का रहने वाला था, इस कारखाने में पाँच साल से हैल्पर का काम कर रहा था। वह यहाँ पर धागा रोल करने वाली डायरेक्ट राफ्टिंग नाम की मशीन पर काम करता था। घटना वाली रात उसे काम पर दुबारा बुलाया गया था। वह दिन में सुबह सात बजे से दुपहर तीन बजे तक काम कर चुका था। जब उसे तीन बजे दुबारा बुलाया गया तब वह नींद वाली हालत में था। जिस मशीन पर वह काम करता था उसका स्केटी सेंसर खराब था। अगर धागा कट भी जाए तो से"टी सेंसर से मशीन रुक जाती थी। मशीन का आपरेटर भी मौजूद नहीं था। मशीन की स्पीड भी बढ़ाई गई थी ताकि उत्पादन अधिक हो सके। इन हालात में दिनेश की मशीन में कटकर मौत हो गई।

इस कारखाने में काम करने वाले मजदूरों से धक्के से ओवरटाइम काम करवाया जाता है और उन्हें साप्ताहिक छुटी भी नहीं दी जाती। मजदूर थकावट और नींद वाली हालत में काम करने पर मजबूर होते हैं। अधिकतर मशीनों में से"टी सेंसर भी काम नहीं करते। उत्पादन बढ़ाने के लिए मशीनों की स्पीड बढ़ा दी जाती है।

जिस दिन मैं इस घटना के बारे में मजदूरों से बात करने गया तो मजदूरों में लाचारी वाला माहौल था। चेतना न होने के चलते यह हालत बनीं हुई है। अगर मजदूरों में मजदूर वर्ग के अधिकारों, क्रान्तिकारी इतिहास, के बारे में जागृति फैलाई जाए तो मजदूर इस लाचार मानसिकता से बाहर निकल सकते हैं।

– संदीप नैयर

दुर्घटनाओं में आये दिन होने वाली मौतें मज़दूरों की नियति बन गयी हैं। हर जगह बेहद ख़तरनाक हालात में मज़दूर काम करते हैं और मालिकान सुरक्षा पर बिल्कुल ख़र्च नहीं करना चाहते क्योंकि उनके मुनाफ़े के आगे मज़दूर की जान बेहद सस्ती है। अगर मज़दूर एकजुट होकर अपनी ज़िन्दगी के लिए भी नहीं लड़ेंगे तो मालिक उनके ऊपर दया करके कुछ नहीं नहीं करने वाले!

हरियाणा के मनरेगा मज़दूरों का संघर्ष जारी!

गत 5 फरवरी को हरियाणा के फतेहाबाद जिला में हुए मनरेगा मज़दूर मज़दूर के प्रदर्शन के बाद तमाम जनसंगठनों ने आगे के संघर्ष के लिए एक साझा मार्चो का निर्माण किया है। जिसमें संघर्ष को चलाने के लिए एक माह की जनकरवाई की रूपरेखा तैयार की गई। तय किया गया की मनरेगा में काम के अधिकार के लिए फरवरी माह में फतेहाबाद के गांव-गांव में मोदी-खट्टर सरकार के पुतले दहन किये जाएगा । साथ ही 27 फरवरी से 2 मार्च तक साझा मोर्चा के बैनर तले क्रमिक अनशन शुरू किया जाएगा।

27 फरवरी को साझा मोर्चा ने फतेहाबाद डीसी कार्यालय पर क्रमिक अनशन की शुरुआत की। जिसमें सभी संगठनों ने के एक-एक प्रतिनिधि अनशन में बैठे। साझा मोर्चा प्रशासन के सामने मांग रखी की। (1) तत्काल मनरेगा का कम शुरू हो। (2) काम नहीं मिलने की सूरत में सरकार मनरेगा मजदूरों को तुरंत बेरोजगारी बता दे ।(3) सरकार द्वारा मनरेगा मजदूरों भूमि उपभोग का अधिकार दिया जाये।(4) भूमि-अधिग्रहण के तहत मिलने वाले मुआवजे में 10प्रतिशत हक मजदूरों का सुनिश्चित हो और गोरखपुर के खेत मजदूरों को तुरंत मुआवजा मिले। (5) मनरेगा की तर्ज पर शहरों में भी 200 दिनों का रोजगार गारंटी कानून बने। (6) मनरेगा के तहत काम न देने वाले जिम्मेदार अधिकारियों पर एससी/एसटी एक्ट के तहत केस दर्ज हो। तीन दिवसीय क्रमिक अनशन के बाद 2 मार्च को मनरेगा मज़दूर ने डीसी कार्यालय के घेराव करेगें अपना मांगपत्रक डीसी को सौंपा। साझा मोर्चा के संजयोक ने बताया की आज देश में नौ महीने पहले ''अच्छे दिनों'' के सपने दिखाकर आई मोदी सरकार ने अपने आकाओं यानी पूँजीपतियों के तलवे चाटने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। असल में मोदी सरकार चुनाव से पहले ही पूँजीपतियों से ये वादा कर चुकी थी कि हम सत्ता में आते ही उसके लूट-मुनाफें की चक्की में आ रही सारी अचड़नों को हटा देंगे। तभी तो देशी-विदेशी पूँजीपतियों ने अकेले मोदी के चुनाव प्रचार पर ही 10हजार करोड़ रुपये खर्च किये थे। अब पूँजीपतियों का गिरोह ब्याज समेत वसूलने के लिए जनता के खून की आखिरी बूंद तक निचोड़ने के लिए अमादा हैं। जिसकी शुरुआत करते हुए मोदी ने मनरेगा मज़दूरों से लेकर तमाम श्रम-कानूनों पर हमला शुरु कर दिया है। यूं तो मोदी संसद में बजट से एक दिन पहले मनरेगा का गाजे-बाजे के साथ ढोल पीटकर निकालने की घोषणा कर रहे है लेकिन दूसरी तरफ मोदी सरकार के कार्यालय में मनरेगा की औसत 54 दिन रोजगार घटकर 34 दिन रहे गया। वहीं आंकड़ों के अनुसार मनरेगा का पिछले वर्ष का आबटन पूरा खर्च नहीं किया गया है और राज्यों द्वारा वर्ष 2013-14 में कराये गये कार्यो का 5 हजार करोड़ रुपयों का भुगतान अभी भी शेष है। इस बजट में पिछली बार की तुलना में केवल 709 करोड़ रुपयों की वृद्धि की गई है। लेकिन बकाया भुगतान और मुद्रास्फीति की 10 प्रतिशत दर को गिनती में ले लिया जाये, तो 34699 करोड़ रुपयों का बजट आबंटन वास्तव में 26729 करोड़ रुपये ही बैठता है। जबकि पिछली स्थिति को बनाये रखने के लिए ही 42389 करोड़ रुपयों का आबंटन जरूरी था। इस प्रकार मनरेगा बजट में वास्तविक कटौती 37 प्रतिशत है। अब घटे हुए मजदूरी अनुपात से इससे वास्तव में अधिकतम 68 करोड़ रोजगार-दिवसों का ही सृजन किया जा सकेगा, जो मनरेगा के इतिहास में सबसे कम सृजन होगा। मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद मनरेगा में जिन परिवारों को रोजगार मुहैया कराया गया है, उनकी संख्या 83.7 लाख से घटकर 60.7 लाख रह गई है, याने मोदी राज में 23 लाख परिवार मनरेगा में काम पाने से वंचित किये गये हैं

संसद में मोदी ने मनरेगा की जिस तरह से खिल्ली उड़ाई है, उससे स्पष्ट है कि संघ संचालित मोदी सरकार मनरेगा के पक्ष में कतई नहीं है। वह इसे 'ग्रामीण परिवारों के लिए रोजगार सुनिश्चित करने वाले कानून' से हटाकर एक ऐसी 'योजना' में तब्दील कर देने पर आमादा है, जिसमें न्यूनतम मजदूरी सुनिश्चित करने का भी प्रावधाान न हो। एक ऐसी योजना, जिसमें ठेकेदारों और मशीनों का बोलबाला हो। लेकिन मोदी की मजबूरी है कि मनरेगा के कानूनी दर्जे को संसद ही खत्म कर सकती है। लेकिन वे इस कानून को धीरे-धीरे निष्प्रभावी करने का काम अवश्य कर सकते हैं।

डीसी कार्यालय के बाद साझा मोर्चा ने तय किया है नये बजट के लागू होने के बाद यदि मनरेगा मज़दूरों को नए सत्र में काम नहीं मिला तो मनरेगा मज़दूरों के इन मांगों को लेकर हरियाणा के दूसरे जिला तक लेकर जाएगा।

– बिगुल संवाददाता

उदारीकरण के बीस वर्षों के दौरान 2 लाख से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं, जिनमें ज़्यादातर छोटे किसान हैं। इन्हें उजाड़ने में पूँजीवादी बड़े ग़मरों, साहूकारों, बैंकों और एग्रीबिज़नेस कारपोरेशनों के अतिरिक्त पूँजीवादी नीतियों की मुख्य भूमिका है। सरकार किसानों की ज़मीन कौड़ियों के मोल अधिगृहीत करके पूँजीपतियों और बिल्डरों को बेचकर ख़ुद दलाली खाकर उन्हें मुनाफ़ा कमाने का मौक़ा दे रही है।

घोषणापत्र का प्रपत्र : प्रपत्र 4
(नियम 8 के अन्तर्गत)

समाचार पत्र का नाम	मज़दूर बिगुल
पत्र की भाषा	हिन्दी
आवर्तिता	मासिक
पत्र का खुदरा बिक्री मूल्य	पाँच रुपये
प्रकाशक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
प्रकाशन का स्थान	निशातगंज, लखनऊ
मुद्रक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
मुद्रणालय का नाम	मल्टीमीडियम, 310, संजयगांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ-226016
सम्पादक का नाम	सुखविन्दर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज लखनऊ-226006
स्वामी का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय

मैं कात्यायनी सिन्हा, यह घोषणा करती हूँ कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य हैं।

हस्ताक्षर
(कात्यायनी सिन्हा)
प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी

दूसरा उत्तराखंड बनने की राह पर हैं हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश में चल रही विभिन्न पन-बिजली परियोजनाओं के कारण पैदा हो रहे खतरों पर एक रिपोर्ट

भारत के उत्तरी भाग में स्थित हिमाचल प्रदेश मुख्यतया एक पर्वतीय राज्य है, जो अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए देश-विदेश में विख्यात हैं। एक तरफ तो यहाँ की मनोरम वादियाँ दुनियाभर के प्रकृति प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, वही दूसरी तरु यहाँ उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर कई बड़ी देशी-विदेशी कंपनियों ने अपनी गिद्धदृष्टि जमा रखी है। देश के बाकी अन्य राज्यों की ही तरह हिमाचल प्रदेश में भी विकास और नौजवानों को रोजगार के अवसर प्रदान करने के नाम पर बड़े-बड़े बाँधों और पन-बिजली परियोजनाओं का जाल बिछाया जा रहा हैं। हिमाचल प्रदेश की कुल जल विद्युत क्षमता 23,000 मेगावाट है, जिसमें से इस समय प्रदेश में चल रही विभिन्न परियोजनाओं के द्वारा 8432 मेगावाट बिजली का उत्पादन किया जा रहा हैं। जबकि कृयान देने योग्य बात हैं कि इस समय हिमाचल प्रदेश को अपनी तमाम जरुरतें पूरी करने के लिए केवल 1200 मेगावाट बिजली की आवश्यकता हैं, परंतु सरकार फिर भी उत्पादन क्षमता को लगातार बढ़ाने की बात कर रही हैं। इस पर सरकार का तर्क हैं कि इन तमाम परियोजनाओं से पैदा होने वाली अतिरिक्त उर्जा को बेचने से जो आय प्राप्त होगी उसे विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं में लगाया जा सकेगा, जिससे हिमाचल प्रदेश के लोगो के जीवन में खुशहाली आयेगी। परंतु असलियत तो यह है कि इस समय देश की विभिन्न उर्जा वितरण कंपनियाँ घाटे में चल रही है, तथा वह इस अवस्था में ही नही हैं कि वो इन निजी कंपनियों द्वारा उत्पादित महंगी बिजली खरीद सके।

इसी के चलते आज हिमाचल प्रदेश सरकार को उत्पादन लागत से काफी कम कीमत पर बिजली बेचने को मजबूर होना पड़ रहा हैं, जिस कारण उसे करोड़ो का घाटा हो रहा हैं। परंतु इसके बावजूद भी सरकार लगातार देशी-विदेशी पूँजीपतियों के साथ अनुबंधों पर हस्ताक्षर करती जा रही हैं, जाहिर है इसके पीछे सरकार की असली मंशा जनकल्याण के नाम पर उदारीकरण तथा निजीकरण की नीतियों को जारी रखना है।

पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन जनता के कल्याण के लिए न हो निजी मुनाफे के लिए किया जाता हैं, यही कारण है कि इतनी प्रचुर मात्र में बिजली होने के बावजूद आज भी देश के कई इलाके शाम होते ही अंधाकार में डूब जाते हैं। जहाँ तक विकास का सवाल है तो इन परियोजनाओं से 'विकास' तो नही पर हाँ 'विनाश' जरूर हो रहा हैं, जिसके परिणामस्वरूप आज यहाँ का भौगोलिक तथा जलवायु संतुलन लगातार बिगड़ता जा रहा है, जिससे आने वाले समय में यहा के निवासियों को भयंकर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त, पूँजीवादी व्यवस्था में विकास के नाम पर लगातार जारी प्राकृतिक संसाधनों की अंधाधुंध लूट और उससे पैदा होने वाले भयंकर दुष्परिणामों की एक झलक हमें पिछले साल उत्तराखंड में देखने को मिली, जहाँ बाढ़, बादल फटने, तथा जमीन धंसने जैसी घटनाओं के कारण हजारों लोग असमय काल के ग्रास में समा गये। हालाँकि, शुरुआत में सरकार ने इसे एक दैवीय प्रकोप बता अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ने की कोशिश कि, परंतु कई सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा जारी कि गई रिपोर्टों से अब यह बात साफ हो गई हैं कि इस भयंकर तबाही का असली कारण लूट-खसूट पर टिकी मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था थी।

वैसे तो हिमाचल प्रदेश में बहने वाली चारों बड़ी नदियों सतलुज, रावी, ब्यास, और चेनाब पर बड़े-बड़े बाँध बनाने का काम भाखड़ा-नंगल बाँध बनने के बाद से ही शुरू हो गया था। परंतु 1991 में तत्कालीन कांग्रेस सरकार द्वारा उदारीकरण तथा निजीकरण की नीतियाँ लागू करने के बाद से इन नदियों पर प्रस्तावित तथा चल रही पनबिजली परियोजनाओं की संख्या में कई गुना वृद्धि दर्ज की गई हैं। आज हालत यह है कि अगर आप हिमाचल प्रदेश के किसी भी गाँव में चले जायें तो वहा आपको स्कूल, अस्पताल भले ही दिखाई न दे, परंतु हर 1-1.5 किलोमीटर के फासले पर कोई न कोई छोटी-बड़ी एक पनबिजली परियोजना जरूर नजर आ जायेगी। हिमाचल प्रदेश की अपार वन संपदा तथा नदियाँ न सिर्फ यहाँ के जलवायु को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, परंतु इसके अतिरिक्त वह यहाँ के निवासियों, और खासकर दूर-दराज के इलाकों में रहने वाले लोगो के लिए जीवनयापन के साधन भी उपलब्ध करवाते हैं। परंतु सरकार जनता द्वारा किये जा रहे भारी विरोध के बावजूद यहाँ मौजूद वन संपदा तथा नदियों को पूँजीपतियों को औने-पौने दामों पर बेची जा रही हैं।

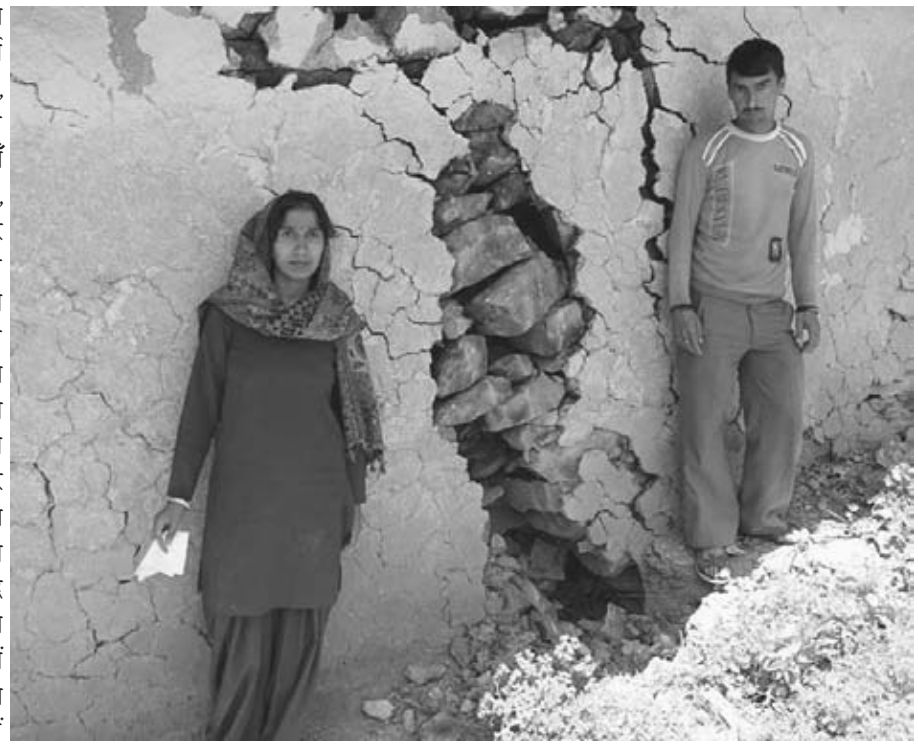

बाँधों के लिए की जा रही ब्लास्टिंग से क्षतिग्रस्त एक ग्रामीण परिवार का मकान

स्थिती कितनी गंभीर है इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि सन 1981 से 2012 के बीच हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा लगभग 10,000 हैक्टर वन क्षेत्र जलविद्युत, खनन, तथा सड़क निर्माण से जुड़ी विभिन्न परियोजनाओं के लिए पूँजीपतियों को आंवटित किये जा चुके हैं। जहाँ एक तरफ तो प्रदेश सरकार कहती है कि स्थानीय लोग वनों का दुरुपयोग करते हैं जिस के कारण पर्यावरण को नुकसान पहुँचता हैं, परंतु वही दूसरी तरफ वह लगातार बड़ी-बड़ी विद्युत परियोजनाओं को मंजूरी देती जा रही है जो पर्यावरण को कई हजार गुना ज्यादा नुक्सान पहुँचाती हैं। इन तमाम परियोजनाओं में से अधिकतर किन्नौर, लाहौल-स्पीति जैसे दुर्गम तथा भूकंप की दृष्टि से अति संवेदनशील इलाको में प्रस्तावित हैं। अकेले लाहौल-स्पीति में ही 20 से ज्यादा जल विद्युत परियोजनाएं प्रस्तावित हैं, जिसमें रिलायंस, टाटा पावर, डीसीएम श्रीराम, तथा एल एंड टी जैसी अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों के करोड़ो रुपये दांव पर लगे हुए हैं। इनमें से अधिकतर सुरंग आधाारित जलविद्युत परियोजनाएँ है, जिनमें बाँध बनाने के स्थान पर बड़ी-बडी सुरंगों के द्वारा नदी के बहाव को मोड़ बिजली उत्पादित कि जाती हैं। ज़्यादा से ज़्यादा बिजली उत्पादन करने के लिए कंपनियों द्वारा कई किलोमीटर लंबी सुरंगों का जाल बिछाया जा रहा हैं, जिसके चलते एक तरफ तो नदियां सूखती जा रही है, वही दूसरी तरफ पहाड़ो के खोखला हो जाने के कारण भूस्खलन जैसी घटनाएँ भी लगातार बढ़ रही हैं। इसके अलावा, सुरंग बनाने के लिए किये जाने वाले धमाको के कारण लोगों के घरों को भयंकर नुक्सान पहुँच रहा है, तथा कई गाँव तो अब बिल्कुल नष्ट होने के कगार पर पहुँच चुके हैं।

इनसे पैदा होने वाले दुष्प्रभावों के कारण इन तमाम परियोजनाओं के खिलाफ जनता का गुस्सा लगातार बढ़ता जा रहा हैं तथा वह रह-रह कर सड़कों पर उतर रही है, परंतु एक सही राजनीतिक लाइन न होने के कारण यह तमाम आंदोलन व्यापक रूप धारण नही कर पा रहे हैं। जिसका एक प्रमुख कारण हैं कि इनका नेतृत्व एन.जी.ओ. तथा पर्यावरणवादियों के हाथ में है, जो सिर्फ पर्यावरण को इनसे होने वाले नुक्सान कि बात करते हैं, परंतु पूँजीवादी व्यवस्था पर कोई सवाल खड़ा नही करते जो कि इस तबाही का मूल कारण हैं। इस बात में कोई शक नहीं है कि मनुष्य ने अब तक जो भी विकास किया हैं वह प्रकृति पर विजय प्राप्त किये बिना संभव नही हो सकता था। हाँ, इतना जरूर है कि ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफा कमाने की अंधी हवस के चलते पूँजीपतियों ने धरती के अस्तित्व पर ही गंभीर संकट खड़ा कर दिया हैं। परंतु इसका मतलब यह नही है कि पर्यावरण को बचाने के नाम पर आधुनिक तकनीक तथा उद्योगों को ही तिलाँजलि दे दि जाये, बल्कि इसका असली समाधाान तो एक समाजवादी व्यवस्था में ही संभव है, जहाँ उत्पादन के संसाधनो पर समस्त जनता का अधिकार होगा। केवल तभी पर्यावरण की हिफ़ाज़त और मनुष्यता के लिए ज़रूरी विकास के बीच सही सन्तुलन कायम किया जा सकेगा। अत: अगर हम इस पृथ्वी को विनाश से बचाना चाहते है तो सिर्फ पर्यावरण दिवस पर फूल पौधे लगाने से काम नहीं चलेगा, बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंककर एक समतापूर्ण व्यवस्था के निर्माण करने के लिए जनता को लामबंद करने के काम को मुख्य एजेंडे पर रखना होगा।

– मनन

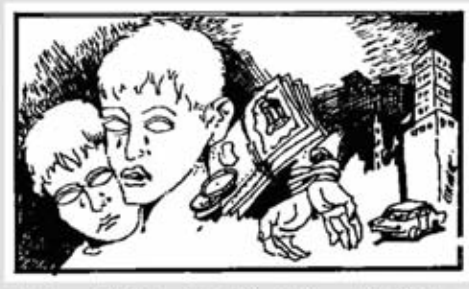

आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढंकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं। यह भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है।

(सेशन कोर्ट में भगतसिंह का बयान)

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोएिशन ने अपने घोषणापत्र में स्पष्ट कहा :

भारतीय पूँजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूँजीपति से विश्वासघात की कीमत के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहते हैं। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएँ अब सिर्फ़ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ़ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव ख़त्म करने में सहायक साबित हो सकता है। देश का भविष्य नौजवानों के सहारे है। वही धरती के बेटे हैं।

केन्द्रीय बजट 2015–2016 : जनता की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने की जिम्मेदारी से पल्ला झाड़कर थैलीशाहों की थैलियाँ भरने का पूरा इंतज़ाम

पेज 1 से आगे)

का यह बजट कृषि क्षेत्र के संकट के बारे में भी पूरी तरह से उदासीन रहा। किसानों को सहूलियत देने की बजाय उनको मिलने वाले कृषि ऋण में कटौती की गई। ज़ाहिर है कि नवउदारवाद की जिस गाड़ी को सरकार ने इस बजट के ज़रिये सरपट दौड़ाया है वह छोटे-मझौले किसानों और खेतिहर मज़दूरों को रौंदकर ही आगे बढ़ने वाली है।

कॉरपोरेट घरानों पर करों में छूट की भरपाई करने के लिए आम जनता पर करों का बोझ लादने के अलावा भी सरकार ने कई ऐसे कड़े क़दम उठाये जिनकी गाज आम मेहनतकश आबादी पर गिरेगी। इस बजट में सरकार ने कुल योजना ख़र्च में 20 प्रतिशत यानी 1.14 करोड़ रुपये की कटौती की जो खाद्य सुरक्षा, शिक्षा, परिवार कल्याण, आवास, स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों से भी हाथ खींचने में मोदी सरकार की नवउदारवादी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। सर्व शिक्षा अभियान, मिड-डे मील स्कीम, नेशनल हेल्थ मिशन जैसी स्कीमों के ज़रिये शासक वर्गों की जो थोड़ी-बहुत जूठन जनता तक पहुँचती है उसमें भी इस बजट में भारी कटौती की घोषणा की गई है। सर्वशिक्षा अभियान बजट में छह हज़ार करोड़ रुपये, मिड-डे मील में चार हज़ार करोड़ रुपये, समेकित बाल-विकास कार्यक्रम में आठ हज़ार करोड़ रुपये और जेंडर बजट में बीस हज़ार करोड़ रुपये की भारी कटौती की गई है। इस बजट में जहाँ सरकार ने पूँजीपतियों को मिलने वाली सब्सिडी में भारी बढ़ोत्तरी की वहीं जनता को मिलने वाली कुल सब्सिडी को सकल घरेलू उत्पादी (जीडीपी) के 2.1 प्रतिशत से घटाकर 1.7 प्रतिशत कर दिया। स्वास्थ्य व परिवार कल्याण के मद में सरकारी ख़र्च को 35,163 करोड़ रुपये से घटाकर 29,653 करोड़ रुपये कर दिया। इसी तरह आवास व ग़रीबी उन्मूलन की स्कीमों में सरकारी ख़र्च को 6,008 करोड़ रुपये से घटाकर 5,634 करोड़ रुपये कर दिया गया। जहाँ जनता की बुनियादी ज़रूरतों में भारी कटौती की गई है, वहीं रक्षा क्षेत्र मके बजट में हर साल की तरह इस बार भी बढोत्तरी की गई। अप्रत्यक्ष करों को बढ़ाने व जनकल्याणकारी स्कीमों में भारी कटौती करने के अतिरिक्त सरकार ने आगामी वित्तीय वर्ष 2015-16 में सार्वजनिक उपक्रमों के विनिवेश के ज़रिये 70,000 करोड़ रुपये इकट्ठा करने का लक्ष्य रखा है। इन सभी फैसलों से यह ज़ाहिर है कि कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य के सरकार द्वारा नहीं बल्कि निजी हाथों को भी वहन करना हो बल्कि इसके ठीक उलट है यानी इस बात की नई तिकड़में तलाशने का है किस तरीके से पूरे का पूरा जोख़िम सरकार वहन करे । अरुण जेटली ने बिज़नेस करना आसान करने के मक़सद से दीवालियापन से जुड़े कानून में सुधार करने और विनियमन को ढीला करने की बात भी अपने बजट भाषण में कही। इन घोषणाओं से यह दिन के उजाले की तरह साफ़ हो जाता है कि सरकार ने लुटेरे पूँजीपतियों को और फ़ायदा यह होता है कि ऐसे निवेश से उन्हें कर भी नहीं देना पड़ता। पिछले कुछ समय से गार की कवायद इसी प्रकार के करों की चोरी को रोकने के लिए की जा रही है। लेकिन हर साल इसे कुछ और वर्षों के लिए टाल दिया जाता है। इस बजट में सरकार ने विदेशी निवेशकों को खुश करने के मक़सद से एफआईआई और एफडीआई के बीच के फ़र्क को भी समाप्त करने की घोषणा की। ग़ौरतलब है कि तुलनात्मक रूप से एफआईआई के

बचे-खुचे चिथड़े को भी हवा में फेंककर सरकार ने नवउदारवाद को पूरी तरह गले लगाने की ठान ली है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इसका सीधा असर मज़दूर वर्ग की ज़िन्दगी में बदहाली के रूप में सामने आयेगा।

देश में पूँजीवाद की गाड़ी को बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से दौड़ाने के लिए इंफ्रास्ट्रक्चर के मद में इस बजट में सरकार ने 70,000 करोड़ रुपये का अतिरिक्त निवेश करने का फैसला किया है। साथ ही सरकार ने इंफ्रास्ट्रक्चर के क्षेत्र में पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप के मॉडल की समीक्षा करने का फैसला किया है। सभी जानते हैं कि यह मॉडल मुनाफ़े को निजी हाथों में सौंपने और नुकसान को जनता के मत्थे मढ़ने के लिए ईज़ाद किया गया था। वित्तमंत्री अरुण जेटली ने अपने बजट भाषण में कहा कि चूँकि यह मॉडल ठीक से काम नहीं कर रहा है इसलिए सरकार को अब जोखिम का और बड़ा हिस्सा वहन करना होगा। यानी इस समीक्षा का मक़सद यह नहीं है कि किस प्रकार किसी प्रोजेक्ट में आने वाले जोख़िम को सिर्फ़ इस बजट के माध्यम से यह संदेश दिया है कि आने वाले दिनों में उसका इरादा अपने इन लुटेरे स्वामियों को लूट की खुली छूट देने का है।

इस बजट के माध्यम से सरकार ने न सिर्फ़ देशी पूँजीपतियों को लूट की खुली छूट देने का संकेत दिया है बल्कि उसने विदेशी साम्राज्यवादी लुटेरे को भी स्पष्ट संकेत दिया है कि ''अच्छे दिनों'' में उनके भी वारे-न्यारे होने वाले हैं। बजट में सरकार ने विदेशी निवेशको रिझाने के लिए विदेशी निवेश में मामलों में टैक्स की चोरी रोकने से संबन्धित कानून जनरल एंटी अवाएडेंस रूल्स (गार) को 2017 तक मुल्तवी करने की घोषणा की। ग़ौरतलब है कि विदेशी निवेश के नाम पर देशी और विदेशी पूँजीपति अपना काला धन मॉरीशस जैसे देशों (जिनको टैक्स हैवेन कहा जाता है क्योंकि वहाँ करों की दर शून्य या न के बराबर है) के ज़रिये भारत में शेयर मार्केट में विदेशी संस्थागत निवेश (एफआईआई) के रूप में और विभिन्न कम्पनियों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के रूप में लाते हैं। इस प्रक्रिया में वे काले धन को सफ़ेद धन में रूपांतरित तो करते ही हैं साथ ही मॉरीशस जैसे देशों के ज़रिये भारत में निवेश करने का एक माध्यम से आने वाली पूँजी कम भरोसेमन्द और अस्थिर मानी जाती है क्योंकि शेयर बाज़ार में लगी होने की बजह से विदेशी निवेशक इसे कभी भी वापस खींच सकते हैं। बजट में एफआईआई को कई और रियायतें देने की घोषणा की गई। अपने बजट भाषण में अरुण जेटली ने विदेशी निवेशकों को पूरा भरोसा दिलाते हुए कहा कि अदालतों में लंबित करों से जुड़े मामलों का जल्द से जल्द निपटारा किया जायेगा। स्पष्ट है कि विदेशी लुटेरों को भी लूट का खुला आमंत्रण दिया जा रहा है।

सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविन्द सुब्रमण्यम के निर्देश में तैयार किये गये आर्थिक सर्वेक्षण, जिसे बजट के ठीक पहले जारी किया गया, में कहा गया था कि अब बिग बैंग (एक झटके में) सुधार की ज़मीन तैयार हो गई है। बजट की घोषणाओं के माध्यम से सरकार ने यह जताने की कोशिश की है कि वह तथाकथित आर्थिक सुधारों (जो वास्तव में मज़दूरों के लिए आर्थिक तानाशाही का दूसरा नाम है) को तेज़ी से लागू करने को लेकर पूरी तरह प्रतिबद्ध है। मज़दूर वर्ग को आने वाले ख़तरनाक दिनों का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा।

हर पाँच में चार लोग अपराध साबित हुए बिना ही भारतीय जेलों के नर्क के क़ैदी हैं
इनमें 90 प्रतिशत लोग ग़रीब और वंचित समुदायों से हैं

आम तौर पर जेल और क़ैदी का नाम सुनते ही दिमाग़ में क्रूर खूँखार क़िस्म के व्यक्तियों का तस्वीर उभरता है। लेकिन बिना अपराध के जेलों में बन्द ग़रीब मज़दूर लोग हमारी नज़रों से ग़ायब हो जाते हैं। पूँजीवादी संस्कृति और पूँजीवादी मीडिया के चेतनाहरण अभियान के तहत चलाये जा रहे दुष्प्रचार के प्रभाव में ऐसा होना कोई आश्चर्य नहीं है। लेकिन ठीक उपरोक्त कारणों से, इस सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण साफ स्पष्ट रखने के लिए, जेलों में बन्द लोगों के आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि की, इससे भी महत्वपूर्ण उनकी वर्गीय स्थिति की और साथ में सम्पूर्ण व्यवस्था का उसका संविधान, क़ानून और न्याय व्यवस्था का वर्गीय चरित्र और व्यवहार की जाँच-पड़ताल जरूरी हो जाता है।

ह्यूमन राइट्स ला नेटवर्क नामक संस्था के मुताबिक भारत की जेलों में बन्द 80 प्रतिशत लोग बिना मुक़दमा का निर्णय हुए ही जेल जीवन और उसकी प्रताड़नाओं को भोगने के लिए अभिशप्त हैं, इन्हें विचाराधीन क़ैदी कहा जाता है। यानी हर पाँच में चार लोग बिना अपराध साबित हुए बिना ही जेलों में बन्द है। ये अपने घर-परिवार से दूर तन्हाई, अपमान, शारीरिक-मानसिक अत्याचार, बीमारी के बीच आशा और निराशा में गोते लगा रहे हैं। विचाराधीन क़ैदियों की संख्या मात्र कुछ सौ या कुछ हज़ार नहीं बल्कि लाखों में है। संसद में एक सवाल के जवाब केन्द्रीय गृह राज्यमंत्री किरण रिजिजू द्वारा दिये गये सरकारी आँकड़े के मुताबिक साल 2012 के अन्त तक भारत विचाराधीन क़ैदियों यानी मुक़दमा के दौरान जेलों में बन्द क़ैदियों की संख्या 2,54,852 (दो लाख चौवन हजार आठ सौ सत्तावन है। इनमें से 2028 विचाराधीन क़ैदी पाँच साल से ज़्यादा समय से जेल जीवन में अभिशप्त है। और कुल विचाराधीन क़ैदियों में से कितने 5-10 साल से और कितने 10-15 साल से जेलों में बन्द हैं इस सवाल का जवाब देना भी मंत्री महोदय ने उचित नहीं समझा।

अंग्रेजी दैनिक अखबार हिन्दू के अनुसार कुल दो लाख अस्सी हजार विचाराधीन क़ैदियों में तीन हजार से ऊपर पाँच साल से अधिक समय से जेल में हैं।

इण्टरनेशनल सेण्टर फार प्रीजन स्टडीज, राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के हवाले से लिखता है कि भारत में कुछ क़ैदियों की संख्या 4,11,992 (चार लाख ग्यारह हजार नौ सौ बानबे) हैं। इनमें से 676 फीसद विचाराधीन क़ैदी है। कुछ क़ैदियों में महिलाएँ 4.4 फीसद है। प्रति एक लाख आबादी में 33 फीसद लोग जेल में बन्द है। कुल 4,11,992 (चार लाख ग्यारह हजार नौ सौ बानबे) के क़ैदियों के सापेक्ष जेलों की कुल धारण क्षमता 3,47,859 (तीन लाख सैंतालिस हजार आठ सौ उनसठ है)। यानी जितनी जगह में 100 क़ैदियों को होना चाहिए उतनी जगह में 118 क़ैदी ठूँसे गये हैं। यह बात ध्यान में रखने का है कि 100 क़ैदियों की जगह में 118 क़ैदियों का होना एक औसत आँकड़ा है। जबकि व्यवहार में आम तौर पर वीआईपी और दबंग क़ैदियों को अतिरिक्त जगह और सुविधाएँ दी जाती हैं यहाँ तक कि वीआईपी और दबंग क़ैदी जेलों में दरबार तक जमाते हैं। ऐसे आम क़ैदियों के वास्तव में कितनी जगह बचती है यह आसानी से समझा जा सकता है।

यदि सरकारी आँकड़ों पर ही गौर किया जाये तो विचाराधीन क़ैदियों की संख्या लगातार बढ़ रहा है। भारतीय विधि आयोग की (78वें) रिपोर्ट के अनुसार अप्रैल 1977 में कुल क़ैदियों की संख्या 1,84,169 थी जिसमें से 1,01,083

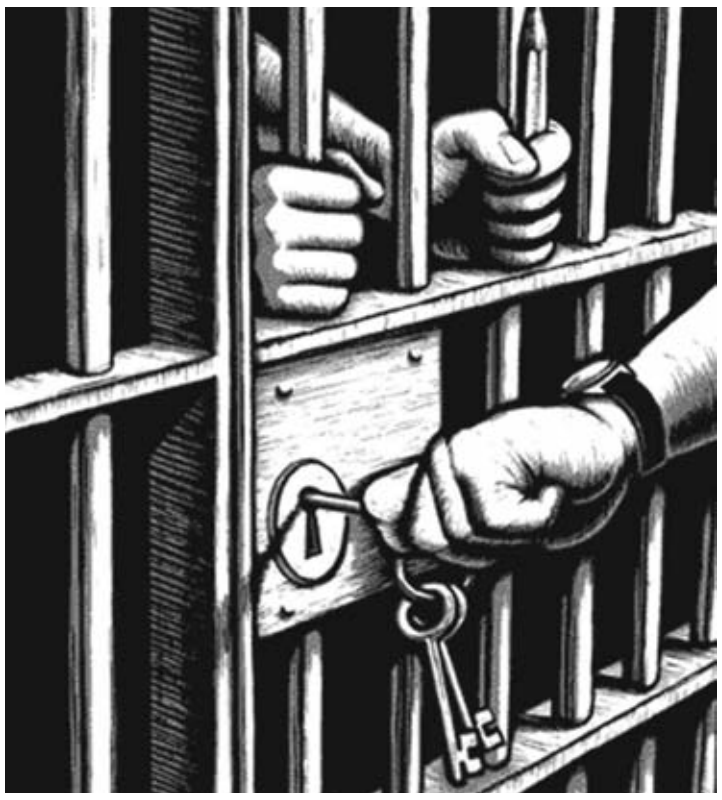

यानी 55 फीसद विचाराधीन क़ैदी थे। जबकि टाइम्स आफ इण्डिया के अनुसार वर्तमान में 75 फीसद क़ैदी विचाराधीन है।

भारतीय जेलों में बन्द कुल क़ैदियों और उनमें से विचाराधीन क़ैदियों के जातिगत सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि को देखे तो दलित, आदिवासी और मुस्लिम क़ैदियों का अनुपात कुल जनसंख्या में उनके अनुपात से कहीं ज़्यादा है।

प्रीजन इण्डिया स्टैटिस्क के अनुसार 2013 के हवाल से कान्टर विमू डाट आर्ग पर उपलब्ध जानकारी से पता चलता है कि कुल जनसंख्या में हिन्दुओं का अनुपात 80 फीसद है जबकि जेलों में बन्द कुल अनुपात सजायाफ्ता हिन्दू क़ैदियों का अनुपात 72 फीसद विचाराधीन हिन्दू क़ैदियों का अनुपात 69 फीसद है। मुस्लिमों का कुल जनसंख्या में अनुपात 14 फीसद है जबकि कुल सजायाफ्ता क़ैदियों में उनका अनुपात 17.1 फीसद तथा विचाराधीन क़ैदियों में 21 फीसद है। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए दलितों की कुल जनसंख्या के अनुपात 16.2 फीसद है। जबकि सजायाफ्ता क़ैदियों में 22.5 फीसद व विचाराधीन क़ैदियों में 21.3 फीसद उनका अनुपात है। यही हाल आदिवासियों का भी है। जिनका जनसंख्या में कुल अनुपात 8.6 फीसद है और सजायाफ्ता क़ैदियों में 11.7 फीसद व विचाराधीन क़ैदियों में उनका अनुपात 11.3 फीसद है। टेबल संख्या दो दिये गये 2012 के आँकड़े भी इसी प्रवृत्ति की गवाही देते हैं।

सवाल उठता है कि दलितों, आदिवासियों और मुस्लिमों का जेलों में अधिक अनुपात में होने के तथ्य को किस रूप में देखा जाये? क्या वे सब स्वभाव से ही अधिक अपराधी है? या उन्हें मात्र जातिगत, सामाजिक एवं धार्मिक पहचान के आधार पर ही जानबूझकर निशाना बनाया जाता है? या इस रूप में देखा जाये कि इन तीनों समुदायों के लोगों का बहुसंख्यक भाग ग़रीब और मज़दूर है। ग़रीब-मज़दूर होने के कारण यह आबादी हर जगह बैठे खेतों-खलिहानों, खदानों, कारखानों सहित अन्य कार्य स्थलों पर शोषित वर्ग के रूप में तथा उपरोक्त स्थलों का मालिक पूँजीपति वर्ग शोषक के रूप में आमने-सामने हैं। पूँजीपति वर्ग चाहे जिस समुदाय का हो वह मुनाफ़े के रूप में करता है। यह आर्थिक शोषण संविधान और क़ानून से मान्यता प्राप्त तथा संस्थागत है। अर्थात संक्षेप में क़ानून के दायरे में है। अधिक मुनाफ़े के रूप में आर्थिक शोषण को अधिकतम करने के लिए पूँजीपति मज़दूरों के खिलाफ गैर क़ानूनी तरीक़े भी अपनाता है। सामन्ती पूर्वाग्रहों और मूल्यों-मान्यताओं के अवशेष औजारों का इस्तेमाल कर गैर आर्थिक उत्पीड़न भी करता है। इन सब कारणों से ग़रीब मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग शहर और गाँव हर जगह टकराव की स्थिति में होते है।। परिणामस्वरूप ये शोषित समुदाय के लोग ही अधिक संख्या में अभियुक्त और अपराधी ठहराये जाते हैं।

– अमेन्द्र कुमार

भारत में जन्म लेने वाले अधिकतर बच्चे और उन्हें जन्म देने वाली गर्भवती माँएँ कुपोषित

(पेज 1 से आगे)

स्त्रियों के साथ और भी अधिक भेदभाव होता है। गर्भवती स्त्रियों को भी आराम करने का पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाता। गर्भ के समय भी काम करना पड़ता है जबकि पर्याप्त भोजन भी उन्हें नहीं मिलता। सरकारी नौकरियों और बड़ी कम्पनियों में अच्छे पदों पर काम करने वाली महिलाओं को तो जच्चगी के पहले और बाद में लम्बी छुट्टी मिल जाती है, लेकिन आम मेहनतकश स्त्रियों को तो प्रसव के ठीक पहले तक कारख़ानों, खेतों और घरों में काम करते रहना पड़ता है। कारख़ानों में गर्भवती स्त्रियों को बीच में आराम करने तक की छुट्टी नहीं मिलती। ग़रीबों के रिहायशी इलाकों और काम की जगहों में फैली गन्दगी और नाजानकारी के कारण गर्भवती स्त्रियाँ कई तरह के संक्रमण की चपेट में आ जाती हैं। इसकी वजह से अजन्मे बच्चे भी गर्भ से ही कुपोषण के शिकार हो जाते हैं।

यही वजह है कि संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्युदर चीन के मुक़ाबले तीन गुना, श्रीलंका के मुक़ाबले लगभग 6 गुना और यहाँ तक कि बांग्लादेश और नेपाल से भी ज़्यादा है। भारतीय बच्चों में से क़रीबन आधों का वज़न ज़रूरत से कम है और वे कुपोषण से ग्रस्त हैं। क़रीब 60 फ़ीसदी बच्चे ख़ून की कमी से ग्रस्त हैं और 74 फ़ीसदी नवजातों में ख़ून की कमी होती है। प्रतिदिन लगभग 9 हज़ार भारतीय बच्चे भूख, कुपोषण और कुपोषणजनित बीमारियों से मरते हैं। 5 साल से कम उम्र के बच्चों की मौत के 50 फ़ीसदी मामलों का कारण कुपोषण होता है। 5 वर्ष से कम आयु के 5 करोड़ भारतीय बच्चे गम्भीर कुपोषण के शिकार हैं। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, 63 फ़ीसदी भारतीय बच्चे प्राय: भूखे सोते हैं और 60 फ़ीसदी कुपोषणग्रस्त होते हैं। 23 फ़ीसदी बच्चे जन्म से कमज़ोर और बीमार होते हैं। एक हज़ार नवजात शिशुओं में से 60 एक वर्ष के भीतर मर जाते हैं।

जो समाज अपने बच्चों और माँओं के प्रति इतना बेरहम हो सकता है वह कैसा समाज होगा, क्या इसके बारे में भी कुछ कहने की ज़रूरत है? क्या ऐसे समाज को जल्द से जल्द बदल नहीं देना चाहिए?

– गीतिका

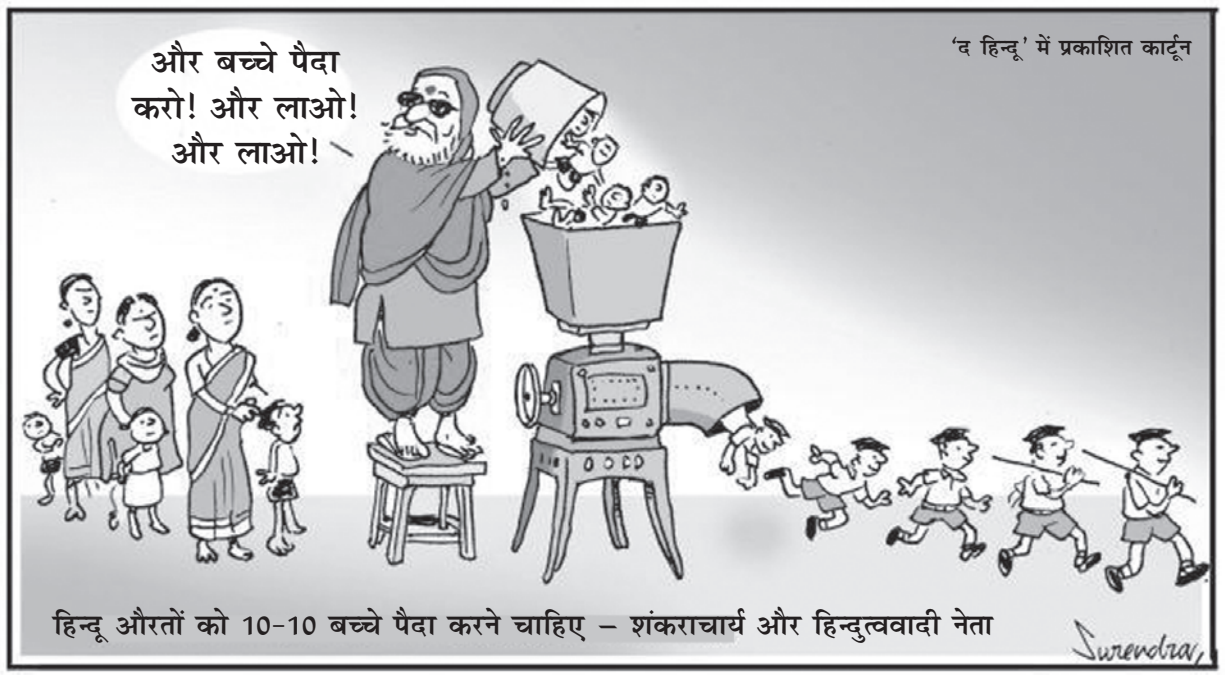

भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु की शहादत की 84वीं बरसी (23 मार्च) के मौक़े पर

भगतसिंह की बात सुनो !

भारतवर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म का होना ही दूसरे धर्म का कट्टर शत्रु होना है।...

ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का भविष्य बहुत अंधकारमय नजर आता है। इन "धर्मों" ने हिन्दुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं कि यह धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नजरों में भारत को बदनाम कर दिया है। और हमने देखा है कि इस अन्धविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई बिरला ही हिन्दू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग ठण्डा रखता है, बाकी सबके सब धर्म के ये नामलेवा अपने नामलेवा धर्म के रोब को कायम रखने के लिए डण्डे-लाठियां, तलवारें-छुरे हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर गोड़-गोड़ कर मर जाते हैं। बाकी बचे कुछ तो फाँसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलों में फेंक दिये जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर इन "धर्मजनों" पर अंग्रेजी सरकार का डण्डा बरसता है और फिर इनके दिमाग का कीड़ा ठिकाने पर आ जाता है।

– भगतसिंह, साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूंजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।

– भगतसिंह, साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज

बात यह है कि क्या धर्म घर में रखते हुए भी, लोगों के दिलों में भेदभाव नहीं बढ़ाता? क्या उसका देश के पूर्ण स्वतंत्रता हासिल करने तक पहुंचने में कोई असर नहीं पड़ता? इस समय पूर्ण स्वतंत्रता के उपासक सज्जन धार्म को दिमागी गुलामी का नाम देते हैं। वे यह भी कहते हैं कि बच्चे से यह कहना कि–ईश्वर ही सर्वशक्तिमान है, मनुष्य कुछ भी नहीं, मिट्टी का पुतला है–बच्चे को हमेशा के लिए कमजोर बनाना है। उसके दिल की ताकत और उसके आत्मविश्वास की भावना को ही नष्ट कर देना है। लेकिन इस बात पर बहस न भी करें और सीधो अपने सामने रखे दो प्रश्नों पर ही विचार करें तो भी हमें नजर आता है कि धर्म हमारे रास्ते में एक रोड़ा है। मसलन हम चाहते हैं कि सभी लोग एक-से हों। उनमें पूँजीपतियों के ऊँच-नीच की छूत-अछूत का कोई विभाजन न रहे। लेकिन सनातन धर्म इस भेदभाव के पक्ष में है। बीसवीं सदी में भी पण्डित, मौलवी जी जैसे लोग भंगी के लड़के के हार पहनाने पर कपड़ों सहित स्नान करते हैं और अछूतों को जनेऊ तक देने से इनकार है। यदि इस धर्म के विरुद्ध कुछ न कहने की कसम ले लें तो चुप कर घर बैठ जाना चाहिए, नहीं तो धर्म का विरोध करना होगा। लोग यह भी कहते हैं कि इन बुराइयों का सुधार किया जाये। बहुत खूब! छूत-अछूत को स्वामी दयानन्द ने जो मिटाया तो वे भी चार वर्णों से आगे नहीं जा पाये। भेदभाव तो फिर भी रहा ही। गुरुद्वारे जाकर सिख 'राज करेगा खालसा' गायें और बाहर आकर पंचायती राज की बातें करें, तो इसका मतलब क्या है?

• • •

...अलग-अलग संगठन और खाने-पीने का भेदभाव हर हालत में मिटाना जरूरी है। छूत-अछूत शब्दों को जड़ से निकालना होगा।

जबतक हम अपनी तंगदिली छोड़कर एक न होंगे, तबतक हममें वास्तविक एकता नहीं हो सकती। इसलिए ऊपर लिखी बातों के अनुसार चलकर ही हम आजादी की ओर बढ़ सकते हैं। हमारी आजादी का अर्थ केवल अंग्रजी चंगुल से छुटकारा पाने का नाम नहीं, वह पूर्ण स्वतन्त्रता का नाम है – जब लोग परस्पर घुल-मिलकर रहेंगे और दिमागी गुलामी से आजाद हो जायेंगे।

– भगतसिंह, धर्म और हमारा स्वतंत्रता संग्राम

प्रगति के समर्थक प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह अनिवार्य है कि वह पुराने विश्वास से सम्बन्धित हर बात की आलोचना करे, उसमें अविश्वास करे और उसे चुनौती दे। प्रचलित विश्वास की एक-एक बात के हर कोने-अंतरे की विवेकपूर्ण जांच-पड़ताल उसे करनी होगी। यदि कोई विवेकपूर्ण ढंग से पर्याप्त सोच विचार के बाद किसी सिद्धान्त या दर्शन में विश्वास करता है तो उसके विश्वास का स्वागत है। उसकी तर्क-पद्धति भ्रांतिपूर्ण, गलत, पथ-भ्रष्ट और कदाचित् हेत्वाभासी हो सकती है, लेकिन ऐसा आदमी सुधर कर सही रास्ते पर आ सकता है, क्योंकि विवेक का ध्रुवतारा सही रास्ता बनाता हुआ उसके जीवन में चमकता रहता है। मगर कोरा विश्वास और अन्धविश्वास खतरनाक होता है। क्योंकि वह दिमाग को कुन्द करता है और आदमी को प्रतिक्रियावादी बना देता है।

यथार्थवादी होने का दावा करने वाले को तो समूचे पुरातन विश्वास को चुनौती देनी होगी। यदि विश्वास विवेक की आंच बरदाश्त नहीं कर सकता तो ध्वस्त हो जायेगा। तब यथार्थवादी आदमी को सबसे पहले उस विश्वास के ढांचे को पूरी तरह गिरा कर उस जगह एक नया दर्शन खड़ा करने के लिये जमीन साफ करनी होगी।

– भगतसिंह, मैं नास्तिक क्यों हूँ?

भारत साम्राज्यवाद के जुवे के नीचे पिस रहा है। इसमें करोड़ों लोग आज अज्ञानता और गरीबी के शिकार हो रहे हैं। भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या जो मजदूरों और किसानों की है, उनको विदेशी दबाव एवं आर्थिक लूट ने पस्त कर दिया है। भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गम्भीर है। उसके सामने दोहरा खतरा है– विदेशी पूंजीवाद का एक तरु से और भारतीय पूंजीवाद के धोखे भरे हमले का दूसरी तरु से। भारतीय पूंजीवाद विदेशी पूंजी के साथ हर रोज बहुत से गंठजोड़ कर रहा है।...

भारतीय पूंजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूंजीपति से विश्वासघात की कीमत के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएं अब सिर्फ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव खत्म करने में सहायक साबित हो सकता है। देश का भविष्य नौजवानों के सहारे है। वही धरती के बेटे हैं।

– हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र

भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु की शहादत की 84वीं बरसी (23 मार्च) के मौक़े पर

स्मृति से प्रेरणा लो, विचारों से दिशा लो!

क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश को क्रान्ति से ही स्वतंत्रता मिलेगी। वे जिस क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं और जिस क्रान्ति का रूप उनके सामने स्पष्ट है उसका अर्थ केवल यह नहीं है कि विदेशी शासकों तथा उनके पिट्ठुओं से क्रान्तिकारियों का सशस्त्र संघर्ष हो, बल्कि इस सशस्त्र संघर्ष के साथ-साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था के द्वार देश के लिए मुक्त हो जायें। क्रान्ति पूंजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी, उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा। क्रान्ति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजदूर तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब सामाजिक अवांछित तत्वों को समाप्त कर देगी जो देश की राजनैतिक शक्ति को हथियाये बैठे हैं।

– भगतसिंह, बम का दर्शन

कांग्रेस का वर्तमान आन्दोलन किसी न किसी समझौते या पूर्ण असफलता में समाप्त होगा।

मैंने यह इसलिए कहा है क्योंकि मेरी राय में इस समय वास्तविक क्रान्तिकारी ताकतें मैदान में नहीं है। यह संघर्ष मध्यवर्गीय दुकानदारों और चन्द पूंजीपतियों के बलबूते किया जा रहा है। यह दोनों वर्ग, विशेषत: पूंजीपति, अपनी सम्पत्ति या मिल्कियत खतरे में डालने की जुर्रत नहीं कर सकते। वास्तविक क्रातिन्कारी सेनाएं तो गांवों और कारखानों में हैं–किसान और मजदूर। लेकिन हमारे 'बुर्जआ' नेताओं में उन्हें साथ लेने की हिम्मत नहीं है, न ही वे ऐसी हिम्मत कर सकते हैं। यह सोये हुए सिंह यदि एक बार गहरी नींद से जग गये तो वे हमारे नेताओं की लक्ष्य-पूर्ति के बाद ही रुकने वाले नहीं हैं।

• • •

इंकलाब का अर्थ मौजूदा सामाजिक ढांचे में पूर्ण परिवर्तन और समाजवाद की स्थापना है। इस लक्ष्य के लिए हमारा पहला कदम ताकत हासिल करना है। वास्तव में 'राज्य', यानी सरकारी मशीनरी, शासक वर्ग के हाथों में अपने हितों की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने का यंत्र ही है। हम इस यंत्र को छीनकर अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं। हमारा आदर्श है–नये ढंग से सामाजिक संरचना, यानी मार्क्सवादी ढंग से। इसी लक्ष्य के लिए हम सरकारी मशीनरी का इस्तेमाल करना चाहते हैं। जनता को लगातार शिक्षा देते रहना है ताकि अपने सामाजिक कार्यक्रम की पूर्ति के लिए अनुकूल व सुविधाजनक वातावरण बनाया जा सके। हम उन्हें संघर्षों के दौरान ही अच्छा प्रशिक्षण और शिक्षा दे सकते हैं।

• • •

क्रान्ति राष्ट्रीय हो या समाजवादी, जिन शक्तियों पर हम निर्भर हो सकते हैं वे हैं किसान और मजदूर। कांग्रेसी नेताओं में इन्हें संगठित करने की हिम्मत नहीं है, इस आन्दोलन में यह आपने स्पष्ट देख लिया है। किसी और से अधिक उन्हें इस बात का अहसास है कि इन शक्तियों के बिना वे विवश हैं। जब उन्होंने सम्पूर्ण आजादी का प्रस्ताव पास किया तो इसका अर्थ क्रान्ति ही था, पर इनका द्धकांग्रेस काऋ मतलब यह नहीं था। इसे नौजवान कार्यकर्ताओं के दबाव में पास किया गया था और इसका इस्तेमाल वे धमकी के रूप में करना चाहते थे, ताकि अपना मनचाहा डोमिनियन स्टेटस हासिल कर सकें।...

हम इस बात पर विचार कर रहे थे कि क्रान्ति किन-किन ताकतों पर निर्भर है? लेकिन यदि आप सोचते हैं कि किसानों और मजदूरों को सक्रिय हिस्सेदारी के लिए आप मना लेंगे तो मैं बताना चाहता हूं वे कि किसी प्रकार की भावुक बातों से बेवकूफ नहीं बनाये जा सकते। वे साफ-साफ पूछेंगे कि उन्हें आपकी क्रान्ति से क्या लाभ होगा, वह क्रान्ति जिसके लिए आप उनसे बलिदान की मांग कर रहे हैं। भारत सरकार का प्रमुख लार्ड रीडिंग की जगह यदि सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास हो तो उन्हें द्धजनता कोऋ इससे क्या र्क पड़ता है? एक किसान को इससे क्या र्क पड़ेगा, यदि लार्ड इरविन की जगह सर तेज बहादुर सप्रू आ जायें। राष्ट्रीय भावनाओं की अपील बिल्कुल बेकार है। उसे आप अपने काम के लिए 'इस्तेमाल' नहीं कर सकते। आपको गम्भीरता से काम लेना होगा और उन्हें समझाना होगा कि क्रान्ति उनके हित में है और उनकी अपनी है। सर्वहारा श्रमिक वर्ग की क्रान्ति, सर्वहारा के लिए।

– भगतसिंह, क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा

'इन्कलाब जिन्दाबाद' से हमारा वह उद्देश्य नहीं था, जो आम तौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करना है।

– भगतसिंह

बमकाण्ड पर हाईकोर्ट में बयान

क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है–अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूंजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढंकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूंजीपति जरा-जरा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिए जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खद की कगार पर चल रहे हैं।

● ● ●

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते संभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जिसे साम्राज्यवाद कहते हैं, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व-शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूंजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

● ● ●

क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भयंकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य है। सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढ़ते हुए उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतन्त्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है। हम सन्तुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। **इन्कलाब जिन्दाबाद!**

– भगतसिंह, बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान

क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका सिर्फ एक ही अर्थ हो सकता है–जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रान्ति', बाकी सभी विद्रोह तो सिर्फ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूंजीवादी सड़ांध को ही आगे बढ़ाते हैं।... भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को–भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगार हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें शोषण पर आधारित हैं–आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते। बुराइयां, एक स्वार्थी समूह की तरह, एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए तैयार हैं।

साम्राज्यवादियों को गद्दी से उतारने के लिए भारत का एकमात्र हथियार श्रमिक क्रान्ति है। कोई और चीज इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती।

– भगतसिंह, क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा

मज़दूरों के महान नेता कार्ल मार्क्स की पुण्य तिथि (14 मार्च) के अवसर पर

कार्ल मार्क्स की समाधि फ्रेडरिक एंगेल्स का भाषण

14 मार्च को तीसरे पहर, पौने तीन बजे, संसार के सबसे महान विचारक की चिन्तन-क्रिया बन्द हो गयी। उन्हें मुश्किल से दो मिनट के लिए अकेला छोड़ा गया होगा, लेकिन जब हम लोग लौटे तो देखा कि वे आरामकुर्सी पर शान्ति से सो गये हैं – परन्तु सदा के लिए।

इस मनुष्य की मृत्यु से यूरोप और अमेरिका के जुझारू सर्वहारा वर्ग और ऐतिहासिक विज्ञान की अपार क्षति हुई है। इस ओजस्वी आत्मा के महाप्रयाण से जो अभाव पैदा हो गया है, लोग शीघ्र ही उसे अनुभव करेंगे।

जैव जगत में जैसे डार्विन ने विकास के नियम का पता लगाया था, वैसे ही मार्क्स ने मानव-इतिहास में विकास के नियम का पता लगाया। उन्होंने इस सीधी-सादी सच्चाई का पता लगाया – जो अब तक विचारधारात्मक आवरण से ढँकी हुई थी – कि राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म आदि की ओर ध्यान दे सकने के पूर्व मनुष्य को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और सिर पर छत चाहिए। इसलिए जीविका के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन और फलतः किसी युग में अथवा किसी जाति द्वारा उपलब्ध आर्थिक विकास की अवस्था ही वह आधार है जिस पर राजकीय संस्थाओं, क़ानूनी धारणाओं, कला और यहाँ तक कि धार्मिक धारणाओं का भी विकास होता है। इसलिए उसके ही प्रकाश में इन सब की व्याख्या की जानी चाहिए, न कि इसके उल्ट, जैसाकि अब तक होता रहा है।

परन्तु इतना ही नहीं, मार्क्स ने गति के उस विशेष नियम का भी पता लगाया जिससे उत्पादन की वर्तमान पूँजीवादी प्रणाली और इस प्रणाली से उत्पन्न पूँजीवादी समाज, दोनों ही नियन्त्रित हैं। अतिरिक्त मूल्य के आविष्कार से एकबारगी उस समस्या पर प्रकाश पड़ा जिसे हल करने की कोशिश में पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों और समाजवादी आलोचकों दोनों द्वारा किया गया अब तक का सारा अन्वेषण अन्ध-अन्वेषण ही था।

ऐसे दो आविष्कार एक जीवन के लिए काफ़ी हैं। वह मनुष्य भी भाग्यशाली कहा जाता, जिसे इस तरह का एक भी आविष्कार करने का सौभाग्य प्राप्त होता। परन्तु जिस भी क्षेत्र में मार्क्स ने खोज की – और उन्होंने बहुत-से क्षेत्रों में, यहाँ तक कि गणित के क्षेत्र में भी, खोज की – एक में भी सतही छानबीन तक सीमित न रहकर स्वतन्त्र खोजें कीं।

ऐसे वैज्ञानिक थे वे। परन्तु वैज्ञानिक का उनका रूप उनके समग्र व्यक्तित्व का आधा अंश भी न था। मार्क्स के लिए विज्ञान ऐतिहासिक रूप से गति प्रदान करनेवाली एक क्रान्तिकारी शक्ति था। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में किसी भी नयी खोज से, जिसके व्यावहारिक प्रयोग का अभी अनुमान लगाना सर्वथा असम्भव हो, उन्हें कितनी भी प्रसन्नता क्यों न होती उसकी तुलना में उस खोज से उन्हें बिल्कुल दूसरे ही ढंग की प्रसन्नता का अनुभव होता जिससे उद्योग-धन्धों और सामान्यतः ऐतिहासिक विकास में कोई तात्कालिक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते दिखायी देते। उदाहरण के लिए बिजली के क्षेत्र में हुए आविष्कारों के विकासक्रम का और मरसै देप्रे* के हाल के आविष्कारों का मार्क्स बड़े ग़ौर से अध्ययन करते थे।

मार्क्स सर्वोपरि क्रान्तिकारी थे। जीवन में उनका असली उद्देश्य किसी न किसी तरह पूँजीवादी समाज और उससे पैदा होनेवाली राजकीय संस्थाओं के ध्वंज में योगदान करना था, आधुनिक सर्वहारा वर्ग को आज़ाद करने में योग देना था, जिसे सबसे पहले उन्होंने ही अपनी स्थिति और आवश्यकताओं के प्रति सचेत किया और बताया कि किन परिस्थितियों में उसका उद्धार हो सकता है। संघर्ष करना उनका सहज गुण था। उन्होंने जिस जोश, जिस लगन और जिस सफलता के साथ संघर्ष किया, उसकी बहुत कम मिसालें हो सकती हैं।

लन्दन के हाइड पार्क में स्थित कार्ल मार्क्स की समाधि। इस पर ऊपर ये शब्द लिखे हैं – दुनिया के मज़दूरों एक हो!

और नीचे लिखे हैं मार्क्स के प्रिय शब्द – दार्शनिकों ने दुनिया की तरह-तरह से व्याख्या की है, पर असली सवाल तो उसे बदलने का है!

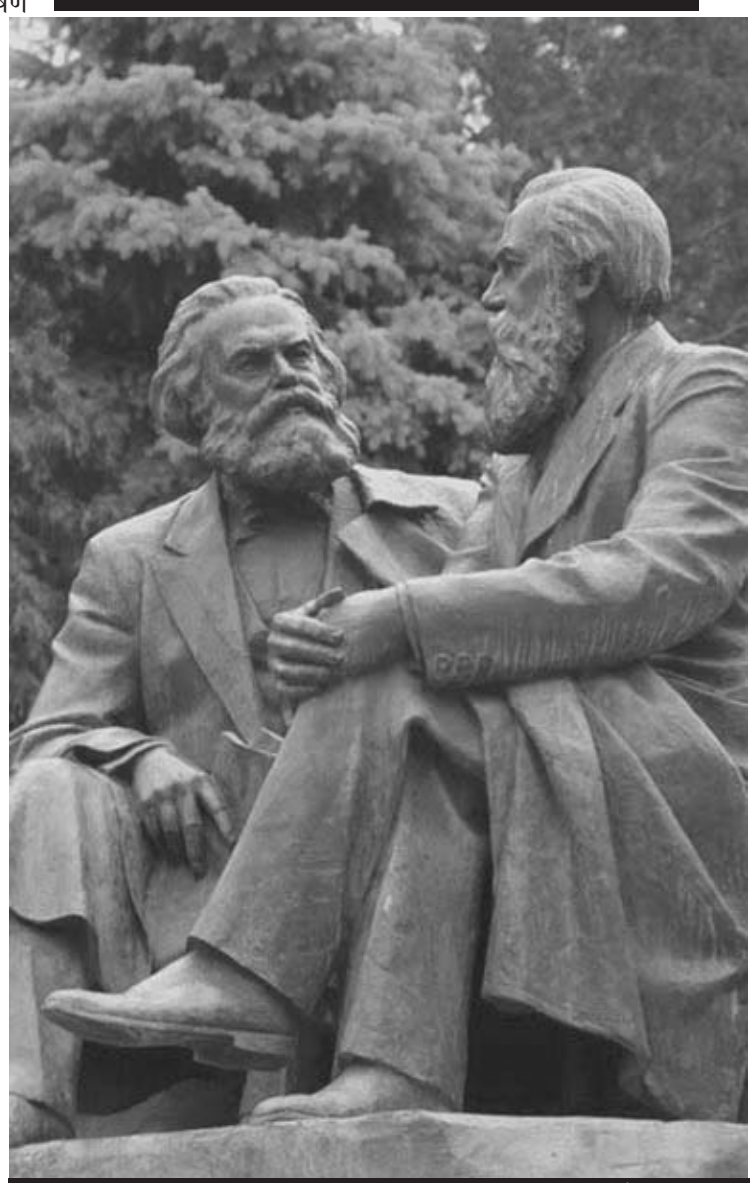

मज़दूर वर्ग के दो महान नेता, दो महान मित्र...मार्क्स और एंगेल्स

प्रथम राइनिश ज़ाइटुंग (1842), पेरिस के वोर्वाट्स! (1844), डाइचे-ब्रसेलेर-ज़ाइटुंग (1847), न्यू राइनिश ज़ाइटुंग (1848-1849), न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून (1852-1861) में उनका काम**, इनके अलावा अनेक जुझारू पुस्तिकाओं की रचना, पेरिस, ब्रसेल्स और लन्दन के संगठनों में काम और अन्ततः उनकी चरम उपलब्धि – महान अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ की स्थापना*** – जो इतनी बड़ी उपलब्धि थी कि इस संगठन का संस्थापक, चाहे उसने और कुछ भी न किया होता, उस पर उचित ही गर्व कर सकता था।

इस सब के फलस्वरूप मार्क्स अपने युग के सबसे अधिक घृणित तथा लांछित व्यक्ति थे। निरंकुशतावादी और जनतन्त्रवादी, दोनों ही तरह की सरकारों ने उन्हें अपने राज्यों से निकाला। पूँजीपति, चाहे वे रूढ़िवादी हों चाहे घोर जनवादी, मार्क्स को बदनाम करने में एक-दूसरे से होड़ करते थे। मार्क्स इस सब को यूँ झटकारकर अलग कर देते थे जैसे वह मकड़ी का जाला हो, उसकी ज़रा भी परवाह न करते थे, बहुत ज़रूरी होने पर ही उत्तर देते थे। और अब वह इस संसार में नहीं हैं। साइबेरिया की खानों से लेकर कैलिफ़ोर्निया तक, यूरोप और अमेरिका के सभी भागों में उनके लाखों क्रान्तिकारी साथी जो उन्हें प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, आज उनके निधन पर आँसू बहा रहे हैं। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि चाहे उनके अनेक विरोधी रहे हों, परन्तु उनका व्यक्तिगत शत्रु शायद ही कोई रहा हो।

उनका नाम और वैसे ही उनका काम भी युग-युगों तक अमर रहेगा!

17 मार्च, 1883

टिप्पणियाँ

* देप्रे, मरसै (1843-1918) – फ़्रांसीसी भौतिक विज्ञानी, दूरी पर विद्युतसंचार प्रणाली के जनक। – स.

** मार्क्स राइनिश ज़ाइटुंग तथा न्यू राइनिश ज़ाइटुंग के सम्पादक थे तथा अन्य समाचारपत्रों के सम्पादक मण्डल के सहकर्मी थे। – स.

*** अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ (पहला इण्टरनेशनल) 1864 में मार्क्स द्वारा स्थापित किया गया तथा 1872 तक क़ायम रहा। वह सर्वहारा पार्टी का बीज रूप था। – स.

कम्युनिस्ट अपने विचारों और उद्देश्यों को छिपाना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं। वे खुलेआम एलान करते हैं कि उनके लक्ष्य पूरी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को बलपूर्वक उलटने से ही सिद्ध किये जा सकते हैं। कम्युनिस्ट क्रान्ति के भय से शासक वर्गों को काँपने दो। सर्वहारा के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा कुछ नहीं है। जीतने के लिए उनके सामने सारी दुनिया है।

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

(कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र के अन्तिम शब्द)

अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस (8 मार्च) के अवसर पर

समाजवादी चीन ने स्त्रियों की गुलामी की बेड़ियों को कैसे तोड़ा

आम तौर पर यह माना जाता है कि स्त्रियों का मुख्य काम घर की देखभाल, बच्चों की परवरिश व चूल्हे-चौके को संभालने तक सीमित है। इसके समर्थन में परम्परा और रीति-रिवाज़ का हवाला देकर इसे कुछ यूँ पेश किया जाता है मानो यह कोई प्राकृतिक नियम हो। मज़ेदार बात तो यह है कि ये विचार सिर्फ़ पुरुषों तक ही नहीं सीमित हैं बल्कि महिलाओं में भी मौजूद हैं। इस तरह स्त्री-पुरुष असमानता और स्त्रियों की दासता को कभी न ख़त्म होने वाला एक सामाजिक नियम समझ लिया जाता है। लोग यह नहीं समझते कि कोई भी सामाजिक नियम ठोस भौतिक अवस्थाओं से जन्म लेता है और उन अवस्थाओं के बदलने के साथ ही वे नियम भी बदल जाते हैं। कम ही लोग यह जानते हैं कि समाजवादी मुल्कों जैसे रूस (1917-1953) और चीन (1949-1976) (जब तक वहाँ समाजवाद का झण्डा बुलंद था) ने स्त्री-पुरुष असमानता और स्त्रियों की दासता के ख़ात्मे की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की थीं। पूँजीवाद इन उपलब्धियों पर पर्दा डालने की हरचन्द कोशिशें तो करता ही है पर साथ ही वह कुत्सा-प्रचार की घिनौनी राजनीति का सहारा लेकर इन उपलब्धियों को कलंकित भी करता है। परन्तु मज़दूर वर्ग के लिए तो समाजवादी प्रयोगों के दौरान हासिल तमाम उपलब्धियों का विशेष महत्व है।

आइये ज़रा देखें कि समाजवादी चीन (1949-1976) ने महिलाओं की गुलामी के ख़ात्मे की दिशा में क्या-क्या महत्वपूर्ण क़दम उठाये थे। यह समझने के लिए हमें क्रान्तिपूर्व चीन में महिलाओं की स्थिति पर एक सरसरी निगाह दौड़ानी होगी। वर्ष 1949 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में हुई क्रान्ति से पहले चीन में महिलाओं को तमाम कुप्रथाओं और सड़ी-गली परम्पराओं का दंश झेलना पड़ता था। छोटी उम्र में ही लड़कियों का जबरन ब्याह कर दिया जाता था। महिलाओं की जिम्मेदारी केवल अपने पतियों की सेवा करने तक सीमित थी। माँ-बाप द्वारा नवजात लड़कियों को मार डालना या भूखा मरने के लिए सड़क के किनारे छोड़ देना आम बात थी। कर्ज़ अदा न कर पाने की सूरत में अक्सर ही किसान अपनी बेटियों को सामंतों को बेचने के लिए मज़बूर कर दिये जाते थे। शहरों में वेश्यावृत्ति के अड्डे बड़े पैमाने पर मौजूद थे। क्रान्तिपूर्व चीन में छोटी उम्र की लड़कियों के पैर बाँधने की एक बर्बर प्रथा प्रचलित थी जिसमें लड़कियों के पैरों को बचपन से ही कपड़ों से यूँ बाँध दिया जाता था जिससे कि दोनों पैरों के पंजे जुड़ सकें क्योंकि इसे सुंदरता का प्रतीक समझा जाता था। छोटी बच्चियों के लिए यह बहुत दर्दनाक होता था, अक्सर ही उन्हें दूसरों का सहारा लेकर चलना पड़ता था।

वर्ष 1949 की चीनी क्रान्ति ने महिलाओं को सड़ी-गली परम्पराओं की बेड़ियों से आज़ाद कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। क्रान्ति के एक वर्ष बाद 1950 में एक नया विवाह कानून पारित किया गया जिसके अन्तर्गत महिलाओं को तलाक़ लेने का अधिकार हासिल हुआ जो उससे पहले केवल पुरुषों को हासिल था। जबरिया कराये जाने वाले विवाह, बहुविवाह, बालविवाह की प्रथाओं पर रोक लगा दी गई। महिलाओं को अपना पति चुनने व बच्चा पैदा करने या न करने की पूरी आज़ादी मिली। छोटी बच्चियों के पैर बाँधे जाने जैसी बर्बर प्रथाओं को ख़त्म किया गया। वेश्यावृत्ति का ख़ात्मा करके इस मानवद्रोही व्यवसाय में लगी महिलाओं को नौकरियों के नये अवसर मुहैया कराये गए। महिलाओं को नुमाइश की वस्तुओं की तरह प्रस्तुत करने वाले विज्ञापन प्रतिबंधित किये गए।

चीनी क्रान्ति के बाद महिलाएँ पहली बार घर की चहारदीवारियों से निकलकर फैक्ट्रियों व सामूहिक फार्मों में पुरुषों के साथ मिलकर काम करने लगीं। लाखों की संख्या में महिलाएँ लाल सेना में भी शामिल हुईं। यही नहीं, नौजवान स्त्रियों ने खुद को छोटे-छोटे समूहों में संगठित करके निर्माण के ऐसे कामों को अंजाम दिया जिन्हें परम्परागत रूप से पुरुषों के लिए आरक्षित समझा जाता था। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में महिलाओं को चूल्हे-चौके और बच्चों की परवरिश की घरेलू दासता से मुक्त करने के लिए सामूहिक भोजनालयों और शिशुशालाओं का ताना-बाना रिहाइश के इलाकों एवं फैक्ट्रियों के निकटवर्ती क्षेत्रों में विकसित किया गया। अब महिलाओं को भी समाजवादी चीन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का पूरा समय मिलने लगा। इन शिशुशालाओं में बच्चों की देखभाल के लिए नियुक्त किए गए लोगों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था। इस तरह के उपक्रमों से महिलाएँ कितने बड़े पैमाने पर घर की चौहद्दियों से निकलकर सामाजिक उत्पादन की दुनिया में शिरकत करने लगीं इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1971 तक 90 प्रतिशत चीनी महिलाएँ घरों से बाहर काम कर रही थीं। कामगार महिलाओं को मातृत्व लाभ की सुविधाएँ (जैसे मातृत्व अवकाश, नवजात शिशुओं को स्तनपान के लिए काम के दौरान 40-60 मिनट की छुट्टी) भी बड़े पैमाने पर उपलब्ध कराई जा रही थीं।

यहाँ यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि समाजवादी चीन (1949-1976) ने महिला मुक्ति के मोर्चे पर जो कुछ भी हासिल किया था उसके मूल में कानूनी परिवर्तन नहीं बल्कि वे सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन थे जिन्हें क्रान्ति ने सम्पन्न किया था। यूँ तो पूँजीवादी समाजों में भी महिलाओं के लिए कानून बनाये जाते हैं, लेकिन इन कानूनों से मिलने वाले लाभ पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों की वजह से निष्प्रभावी हो जाते हैं और इस तरह पूँजीवाद में कानून होने के बावजूद स्त्रियों की दासता बनी रहती है और स्त्री-पुरुष समानता दूर की कड़ी नज़र आती है।

हालाँकि वर्ष 1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में देङ सियाओ पिङ के नेतृत्व में पूँजीवादी पुनर्स्थापना हो गई। इसके साथ ही महिलाओं की गुलामी का सिलसिला फिर से शुरू हो गया। पूँजीवादी चीन में आज महिलाओं की स्थिति का अंदाज़ा कुछ आँकड़ों से ही लगाया जा सकता है। आज चीन में एक ही जैसे काम के लिए महिलओं को पुरुषों की अपेक्षा 31 प्रतिशत कम वेतन मिलता है। बेरोज़गारी की दर भी महिलाओं में अधिक है। महिलाओं को विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काम तलाशने में खासा मुश्किलात का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के लिए सेवानिवृत्ति की आयु पुरुषों के मुकाबले 5-10 वर्ष कम है जिससे उन्हें सामाजिक सुरक्षाओं का थोड़ा ही लाभ मिल पाता है। गर्भवती महिलाओं को अक्सर काम से निकाल दिया जाता है, मातृत्व अवकाश की उनकी अर्जियों को भी ख़ारिज कर दिया जाता है। कार्यस्थलों पर महिलाओं के लिए असुरक्षित माहौल का अंदाज़ा 2013 में किए गए एक अध्ययन से ही लगाया जा सकता है जिसके अनुसार दक्षिणी चीन के एक शहर ग्वांगजांग की एक फैक्ट्री में 70 प्रतिशत महिलाएँ यौन उत्पीड़न का शिकार पायी गईं।

समाजवादी चीन ने बहुविवाह व कन्या भ्रूण-हत्या जैसी जिन कुप्रथाओं का ख़ात्मा किया था आज वे पूँजीवादी चीन में फिर से सिर उठा चुकी हैं। चीन में तेज़ी से बढ़ रही लैंगिक असमानता का आलम यह है कि एक आकलन के मुताबिक वर्ष 2020 तक चीन में पुरुषों की संख्या महिलाओं की संख्या से 3 करोड़ अधिक होगी। महिलाएँ बड़े पैमाने पर घरेलू हिंसा व बलात्कार जैसे घृणित अपराधों का शिकार हैं। ग़ौरतलब है कि स्वास्थ्य सुविधाओं के निजीकरण से मँहगे होते दवा-इलाज की पहुँच आम मज़दूर आबादी से तो दूर हुई ही है परन्तु इसका सबसे अधिक कहर तो ग़रीब महिलाओं पर ही पड़ा है। चीन में कामगार महिलाओं का 70 प्रतिशत हिस्सा कपड़ों, खिलौनों एवं इलेक्ट्रॉनिक सामानों के उद्योगों में लगा हुआ है। आवास सुविधाएँ न उपलब्ध होने के कारण ये महिलाएँ डॉरमेट्रियों में रहने को मज़बूर होती हैं जहाँ की परिस्थितियाँ अस्वस्थकर होने की वजह से अक्सर ही उन्हें बीमारियों का कहर झेलना पड़ता है। वर्ष 2009 में इन डॉरमेट्रियों में रहने वाली 20,000 महिलाएँ बीमार पड़ीं जिनकी ज़रा भी सुध सरकार ने नहीं ली।

आज अगर चीन में महिलाओं की गैर-बराबरी की स्थिति फिर से पैदा हुई है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। 1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में समाजवाद के ख़ात्मे के साथ ही पूँजीवादी सामाजिक व आर्थिक सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गए। निजी स्वामित्व पर टिके पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में स्त्रियों की गुलामी अन्तर्निहित है। चीनी क्रान्ति ने एक छोटे से कालखण्ड में निजी स्वामित्व की व्यवस्था का नाश करके महिलाओं को गुलामी की बेड़ियों से बाहर निकालकर साबित कर दिया कि स्त्रियों की सच्ची मुक्ति तो केवल समाजवादी समाज में ही संभव है।

-श्वेता

पूँजी के और उजरती श्रम के हित हमेशा एक दूसरे के बिल्कुल विरोधी होते हैं

मार्क्स की प्रसिद्ध रचना 'उजरती श्रम और पूँजी' के अंश

उत्पादक पूँजी की बढ़ती का मज़दूरी पर क्या प्रभाव पड़ता है?

यदि बुर्जुआ समाज की उत्पादक पूँजी की, आम तौर पर, बढ़ती हो रही है, तो श्रम का अधिक बहुविध संचय होगा। पूँजियों की संख्या और आकार बढ़ जाते हैं। पूँजियों की संख्या में बढ़ती होने से पूँजीपतियों के बीच होड़ बढ़ जाती है। पूँजियों के आकार में बढ़ती होते रहने से वे साधन तैयार हो जाते हैं, जिनसे मज़दूरों की पहले से अधिक शक्तिशाली सेनाओं को और भी विराट अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित करके औद्योगिक युद्ध-क्षेत्र में उतारा जा सकता है।

यदि एक पूँजीपति दूसरे पूँजीपति को मैदान से भगाकर उसकी पूँजी पर कब्ज़ा कर लेना चाहता है, तो इसका केवल एक यही उपाय है कि वह उससे सस्ता माल बेचे। यदि बिना अपने को बर्बाद किये वह माल सस्ता बेचना चाहता है, तो उसके लिए ज़रूरी है कि वह अपना माल भी अधिक सस्ते में तैयार करे, यानी श्रम की उत्पादक शक्ति अधिक से अधिक बढ़ाये। लेकिन श्रम की उत्पादक शक्ति बढ़ाने का प्रधान उपाय यह है कि श्रम का पहले से अधिक विभाजन किया जाये, मशीनों का और सार्वत्रिक प्रयोग किया जाये और उनमें लगातार सुधार किये जायें। मज़दूरों की वह सेना जितनी ही बड़ी होगी, जिसमें श्रम का विभाजन किया जायेगा, जितने ही विशाल पैमाने पर मशीनों का प्रयोग किया जायेगा, उतना ही और उसी अनुपात में उत्पादन-व्यय कम हो जायेगा और श्रम उतना ही अधिक फलप्रद होगा। इसीलिए पूँजीपतियों के बीच श्रम का विभाजन करने तथा मशीनों का इस्तेमाल करने और दोनों तरीकों का बड़े से बड़े पैमाने पर उपयोग करने की आम होड़ आरम्भ हो जाती है।

अब यदि कोई पूँजीपति श्रम का अधिक विभाजन करके, नयी-नयी मशीनें इस्तेमाल करके तथा उनमें सुधार करके और प्राकृतिक शक्तियों का अधिक लाभदायक एवं व्यापक ढंग से उपयोग करके उतने ही श्रम से या उतने ही संचित श्रम से अपने प्रतिद्वन्द्वियों के मुकाबले में ज़्यादा माल तैयार करने में कामयाब होता है, उदाहरणार्थ, यदि उतने ही श्रम-काल में, जितने में उसके प्रतिद्वन्द्वी आधा गज़ कपड़ा तैयार करते हैं, वह एक गज़ तैयार करने लगता है, तो वह किस प्रकार व्यवहार करेगा?

वह अब भी पुराने बाज़ार-भाव पर आधा गज़ कपड़ा बेच सकता है; लेकिन इस तरह वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों को मैदान से नहीं भगा पायेगा और न अपनी बिक्री ही बढ़ा सकेगा। किन्तु जिस हद तक उसका उत्पादन बढ़ा है, उसी हद तक उसकी अपना माल बेचने की आवश्यकता भी बढ़ गयी है। उसने उत्पादन के जिन अधिक शक्तिशाली और महँगे साधनों को गतिशील किया है, उनकी बदौलत वह निश्चय ही अपना माल पहले से अधिक सस्ते दामों में बेचने में समर्थ हो जाता है : लेकिन साथ ही ये साधन उसे पहले से कहीं ज़्यादा माल बेचने पर मजबूर करते हैं। वे उसे अपने माल के लिए पहले से कहीं ज़्यादा बड़े बाज़ार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए बाध्य करते हैं। फलतः हमारा यह पूँजीपति अपना आधा गज़ कपड़ा अपने प्रतिद्वन्द्वियों से अधिक सस्ते दामों में बेचने लगता है।

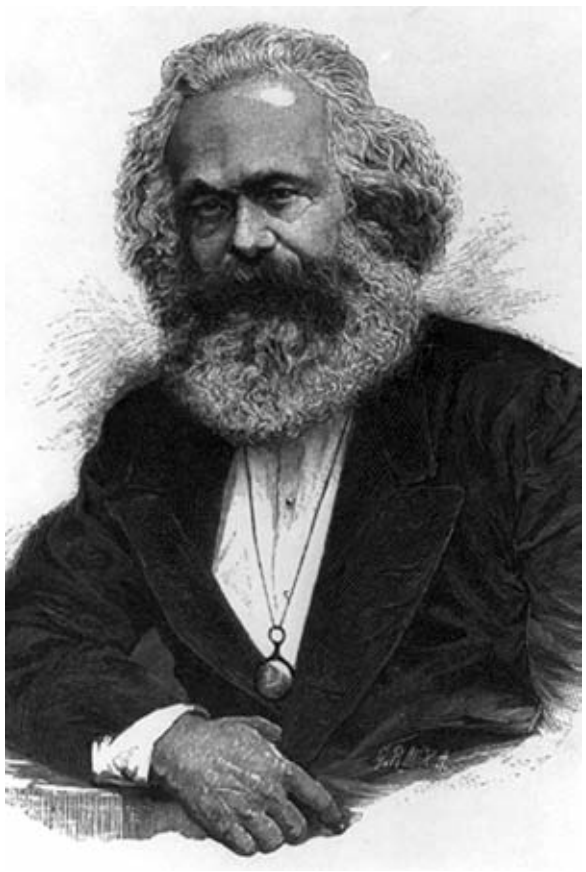

परन्तु, जिस दाम पर उसके प्रतिद्वन्द्वी आधा गज़ कपड़ा बेचते हैं, उस दाम पर वह पूरा एक गज़ कपड़ा नहीं बेचेगा, हालाँकि उसके पूरे गज़ के उत्पादन में उससे अधिक लागत नहीं बैठी है, जितनी दूसरों के आधे गज़ के उत्पादन में बैठी है। क्योंकि यदि वह ऐसा करेगा, तो उसे कोई अतिरिक्त मुनाफ़ा नहीं मिलेगा, बस, केवल विनिमय द्वारा उत्पादन-व्यय वापस मिल जायेगा। उसकी आमदनी, सम्भव है, बढ़ जायेगी, लेकिन वह इस कारण बढ़ेगी कि उसने औरों से अधिक पूँजी गतिशील की है, इस कारण नहीं कि उसने अपनी पूँजी से औरों के मुकाबले में ज़्यादा लाभ उठाया है। इसके अलावा, अपने माल का दाम अपने प्रतिद्वन्द्वियों के माल की अपेक्षा कुछ प्रतिशत कम कर देने से ही उसका उद्देश्य पूरा हो जाता है। अपना माल उनसे सस्ता बेचकर वह उनको मैदान से भगा देता है, या, कम से कम, उनसे उनकी बिक्री का एक भाग अवश्य छीन लेता है। और अन्त में हमें याद रखना होगा कि किसी भी माल का बाज़ार-भाव उसके उत्पादन-व्यय से हमेशा कुछ कम या ज़्यादा रहता है, जो इस पर निर्भर करता है कि क्या उस माल की बिक्री उद्योग की अनुकूल अवस्था में हो रही है या प्रतिकूल अवस्था में। उत्पादन के नये तथा अधिक लाभकर साधनों का प्रयोग करनेवाला पूँजीपति अपने माल को असली उत्पादन-व्यय से कितने प्रतिशत अधिक में बेचेगा, यह इस पर निर्भर करेगा कि एक गज़ कपड़े का बाज़ार-भाव, अभी तक आम तौर पर जो उसका उत्पादन-व्यय हुआ करता था, उससे कम है या ज़्यादा।

परन्तु हमारे पूँजीपति की यह विशेष सुविधापूर्ण स्थिति बहुत दिनों तक कायम नहीं रहती। दूसरे प्रतिद्वन्द्वी पूँजीपति भी उन्हीं मशीनों का, उसी तरह के श्रम-विभाजन का, उसी या उससे भी बड़े पैमाने पर प्रयोग करने लगते हैं और ये तरीकष्ठे इतने सामान्य हो जाते हैं कि कपड़े का दाम उसके पुराने ही नहीं, बल्कि उसके नये उत्पादन-व्यय से भी नीचे गिर जाता है।

इसलिए पूँजीपतियों की एक दूसरे की निस्बत फिर वही हालत हो जाती है, जो उत्पादन के नये साधनों के प्रयोग में आने के पहले थी। इन साधनों से यदि वे उतने ही दामों में पहले से दूना उत्पादन कर सकते थे, तो अब उन्हें इस दूनी पैदावार को पहले के दामों से कम कर बेचना होता है। इस नये उत्पादन-व्यय के आधार पर फिर वही पुराना खेल शुरू हो जाता है। श्रम का और अधिक विभाजन होता है और नयी मशीनें आती हैं, पहले से भी बड़े पैमाने पर मशीनों का तथा श्रम-विभाजन का इस्तेमाल किया जाता है। और होड़ इस परिणाम के विरुद्ध फिर उसी प्रकार प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देती है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि उत्पादन की प्रणाली और उत्पादन के साधन कैसे लगातार बदलते रहते हैं, क्रान्तिकारी ढंग से रूपान्तरित होते रहते हैं, और कैसे लाज़िमी तौर पर श्रम-विभाजन के बाद और भी ज़्यादा श्रम-विभाजन होता है, मशीनों के प्रयोग के बाद और भी ज़्यादा मशीनों का प्रयोग होता है और बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के बाद और भी बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है।

यही वह नियम है, जो बार-बार बुर्जुआ उत्पादन को अपनी पुरानी लीक से हटा देता है और पूँजी को इसके लिए बाध्य करता है कि चूँकि उसने श्रम की उत्पादक शक्तियों को तीव्र किया है, इसलिए वह उनको और भी तीव्र करे। यही वह नियम है, जो पूँजी को तनिक भी विश्राम नहीं लेने देता और उसके कानों में सदा गुनगुनाया करता है : "और बढ़ो! और बढ़ो!"

यह वही नियम है, जो व्यापार के उतार-चढ़ाव की अवस्थाओं में हर माल के दाम को अनिवार्यतः उसके उत्पादन-व्यय के स्तर पर ला पटकता है।

कोई पूँजीपति उत्पादन के कितने ही शक्तिशाली साधनों को मैदान में क्यों न लाये, होड़ इन साधनों को सार्वत्रिक बना देगी, और जिस क्षण ये साधन सार्वत्रिक हो जायेंगे उसी क्षण से उस पूँजीपति की पूँजी के अधिक फलदायक होने का केवल यही परिणाम होगा कि अब उसे उतने ही दामों में पहले से दस गुना, बीस गुना या सौ गुना अधिक माल प्रस्तुत करना होगा। लेकिन अधिक बिक्री द्वारा बिक्री के घटे हुए दामों को बराबर करने के लिए अब चूँकि पहले के मुकाष्ठाबले में उसे शायद एक हज़ार गुना अधिक माल बेचने की आवश्यकता होगी, अब चूँकि अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए ही नहीं, बल्कि उत्पादन-व्यय को पूरा करने के लिए भी (जैसा कि आपने देखा है, उत्पादन के औज़ार अधिकाधिक महँगे होते जाते हैं) उसे बिक्री और भी बढ़ानी होगी, और चूँकि बिक्री का यह विस्तार न केवल उसके लिए, बल्कि उसके प्रतिद्वन्द्वियों के लिए भी जीवन-मरण का प्रश्न बन जाता है, इसलिए उत्पादन के आविष्कृत साधन जितने ही फलदायी सिद्ध होंगे, पूँजीपतियों का पुराना संघर्ष उतने ही भीषण रूप में फिर छिड़ जायेगा। इस प्रकार, श्रम का विभाजन और मशीनों का उपयोग फिर पहले से अधिक बड़े पैमाने पर होने लगेगा।

उत्पादन के प्रयुक्त साधनों की शक्ति चाहे जितनी हो, होड़ मालों के दामों को फिर उत्पादन-व्यय के स्तर पर खींचकर और इस प्रकार, जिस हद तक उत्पादन सस्ता बनाया जा सकता है, अर्थात जिस हद तक उतने ही श्रम से पहले से अधिक उत्पादन किया जा सकता है, उस हद तक उत्पादन को सस्ता करने-यानी उतने ही कुल दाम में अधिकाधिक मात्रा में माल प्रस्तुत करने-को एक अनिवार्य नियम बनाकर पूँजी को इस शक्ति के सुनहरे फल से वंचित कर देती है। इस प्रकार, पूँजीपति को अपनी सारी कोशिशों का केवल यह फल मिलता है कि उसे उतने ही श्रम-काल में पहले से अधिक माल प्रस्तुत करना होता है, यानी संक्षेप में कहा जाये, तो अपनी पूँजी का मूल्य बढ़ाने का काम अब उसे और कठिन परिस्थितियों में करना होता है। इसलिए जहाँ, एक तरफ, होड़ अपना उत्पादन-व्यय का नियम लेकर सदा पूँजीपति के पीछे पड़ी रहती है और अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर प्रहार के लिए जो अस्त्र भी वह गढ़ता है वह पलटकर उसी पर चोट करता है, वहीं, दूसरी ओर, बराबर और नयी मशीनें लगाकर-गोकि वे ज़्यादा महँगी होती हैं, पर उत्पादन सस्ता कर देती हैं-तथा श्रम का पुराने की जगह नया विभाजन करके, बिना इस बात का इन्तज़ार किये कि होड़ उसकी नयी मशीनों को गतप्रयोग बना दे, पूँजीपति होड़ के ऊपर काबू पाने की सतत चेष्टा करता है।

अब यदि हम एकसाथ विश्व-बाज़ार में होनेवाली इस ज़बर्दस्त हलचल की कल्पना करें, तो हम समझ सकेंगे कि पूँजी के विकास, संचय और केन्द्रीकरण के परिणामस्वरूप किस प्रकार श्रम का निरन्तर विभाजन होता रहता है और किस प्रकार नयी मशीनों का प्रयोग और पुरानी मशीनों का नवीकरण नित्य बढ़ते हुए पैमाने पर होता रहता है।

लेकिन इन परिस्थितियों का, जिनका उत्पादक पूँजी की बढ़ती के साथ अटूट सम्बन्ध है, मज़दूरी के निर्धारण पर क्या प्रभाव पड़ता है?

श्रम-विभाजन की वृद्धि की बदौलत एक मज़दूर पाँच, दस या बीस मज़दूरों का काम करने लगता है। इसलिए उसकी वजह से मज़दूरों के बीच चलनेवाली होड़ पहले से पाँच गुनी, दस गुनी या बीस गुनी बढ़ जाती है। मज़दूर इस तरह ही आपस में होड़ नहीं करते कि प्रत्येक अपने को दूसरे से अधिक सस्ते दामों में बेचने की कोशिश करने लगे, बल्कि वे इस तरह भी आपस में होड़ करते हैं कि स्फिष्ठ एक मज़दूर पाँच, दस या बीस मज़दूरों का काम करने लगता है।

(पेज 13 पर जारी)

पूँजी के और उजरती श्रम के हित हमेशा एक दूसरे के बिल्कुल विरोधी होते हैं

पेज 12 से आगे)

पूँजी द्वारा लागू किया हुआ और निरन्तर बढ़ता हुआ श्रम-विभाजन मज़दूरों को इस प्रकार की होड़ के लिए मजबूर करता है।

इसके अलावा, जैसे-जैसे श्रम-विभाजन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे श्रम सरल होता जाता है। मज़दूर की विशेष निपुणता बेकार हो जाती है। वह एक ऐसी सरल, नीरस और यंत्रवत उत्पादन शक्ति बन जाता है, जिसे तीव्र शारीरिक अथवा बौद्धिक क्षमताओं का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसका श्रम ऐसा श्रम बन जाता है, जिसे कोई भी कर सकता है। इसलिए उसे चारों ओर से प्रतिद्वन्द्वी आकर घेर लेते हैं। और इसके अलावा, हम पाठकों को यह भी याद दिला दें कि श्रम जितना सहज-साध्य है, उसे सीखना जितना सरल है, उसमें निपुणता प्राप्त करने के लिए जितना कम उत्पादन-व्यय आवश्यक है, उतनी ही मज़दूरी में भी कमी होती है, क्योंकि अन्य माल के दाम की तरह मज़दूरी भी उसके उत्पादन-व्यय द्वारा ही निर्धारित होती है।

इसलिए जैसे-जैसे श्रम अधिकाधिक असन्तोषप्रद और अरुचिकर बनता जाता है, वैसे-वैसे होड़ बढ़ती जाती है और मज़दूरी कम होती जाती है। मज़दूर पहले से ज़्यादा काम करके अपनी मज़दूरी बरकरार रखने की कोशिश करता है; इसके लिए चाहे वह ज़्यादा घण्टे काम करे या एक घण्टे में अधिक माल तैयार करे। अभाव द्वारा प्रेरित होकर वह श्रम-विभाजन के बुरे परिणामों को और भी बढ़ा देता है। नतीजा यह होता है कि वह जितना ज़्यादा काम करता है, उतनी ही कम मज़दूरी पाता है। और यह सिर्फ इसलिए कि वह जितना ज़्यादा काम करता है, उतना ही अधिक अपने साथी मज़दूरों के साथ होड़ करता है और इसलिए वह उन सब को प्रतिद्वन्द्वी बना लेता है, जो उतनी ही बुरी शर्तों पर काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं, जितनी बुरी शर्तों पर वह खुद काम करने के लिए तैयार हो गया है। और इसलिए, अन्ततोगत्वा, मज़दूर ख़ुद अपना, मज़दूर वर्ग के एक सदस्य के रूप में खुद अपना प्रतिद्वन्द्वी बन जाता है।

मशीनें कुशल की जगह अकुशल मज़दूरों को, मर्दों की जगह औरतों को और वयस्कों की जगह बच्चों को लाकर और भी बड़े पैमाने पर इसी तरह के परिणाम उत्पन्न करती हैं। जहाँ कहीं मशीनों का प्रयोग शुरू होता है, वहाँ वे हाथ से काम करनेवाले मज़दूरों के पूरे के पूरे समुदायों को बेकार करके, और जहाँ मशीनों में विकास या सुधार होता है और पुरानी की जगह नयी, अधिक उत्पादक मशीनें लगायी जाती हैं, वहाँ वे मज़दूरों की अपेक्षाकृत छोटी टोलियों को बेकार करके इसी तरह के परिणाम उत्पन्न करती हैं। ऊपर हमने पूँजीपतियों के बीच आपस में चलनेवाले औद्योगिक युद्ध का जल्दी-जल्दी में एक चित्र उपस्थित किया है। इस युद्ध की विशेषता यह है कि इसकी लड़ाइयाँ उतनी मज़दूरों की फौज भर्ती करके नहीं, जितनी उन्हें बर्ख़ास्त करके जीती जाती हैं। इन फौजों के सेनापति, अर्थात पूँजीपति, इस बात में एक दूसरे से होड़ करते हैं कि उद्योग के सबसे ज़्यादा सैनिकों को कौन बर्ख़ास्त कर सकता है।

यह सच है कि अर्थशास्त्री हमें यह बताते हैं कि जो मज़दूर मशीनों की वजह से फालतू हो जाते हैं उन्हें उद्योग-धन्धों की नयी शाखाओं में काम मिल जाता है।

वे सीधे-सीधे यह कहने की हिम्मत नहीं करते कि जो मज़दूर निकाले जाते हैं उन्हीं को श्रम की नयी शाखाओं में काम मिलता है। वास्तविक इस झूठ का प्रबल रूप से खण्डन करती है। असल में, वे केवल यह कहते हैं कि मज़दूर वर्ग के दूसरे संघटक भागों के लिए नौकरी के नये रास्ते खुल जायेंगे—मसलन मज़दूरों की नौजवान पीढ़ी के एक हिस्से के लिए, जो उद्योग की उस शाखा में प्रवेश करने के लिए तैयार खड़ा था, जो अब चौपट हो गयी है। अभागे मज़दूरों के लिए नि:सन्देह यह एक बहुत बड़ी दिलासा है। धर्मपरायण पूँजीपतियों को दोहन के लिए रक्त और मांस की कमी कभी न होगी और जो बीत गयी है वे उसे भूल जायेंगे। यह वह दिलासा है, जो पूँजीपति अपने को देता है, न कि मज़दूरों को। यदि मशीनों की वजह से उजरती मज़दूरों का पूरा वर्ग ही मिट जाये, तो पूँजी के लिए यह कितनी भयानक बात होगी—उजरती श्रम न हो तो पूँजी पूँजी न रहेगी!

परन्तु मान लीजिये कि जिन लोगों की रोज़ी मशीनों ने सीधे-सीधे छीन ली है उन्हें, और नयी पीढ़ी के मज़दूरों के उस हिस्से को, जो इन नौकरियों पर पहले से आँख लगाये था, नया धन्धा मिल जाता है, तो क्या कोई यह विश्वास कर सकता है कि इस नये काम के लिए भी मज़दूरों को उतनी ही ऊँची मज़दूरी मिलेगी, जितनी उनको पुराने काम के लिए मिलती थी, जो उनके हाथ से अब जाता रहा है? यदि ऐसा होने लगे, तो अर्थशास्त्र के सारे नियम झूठे पड़ जायें। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार आधुनिक उद्योग सदा अधिक जटिल तथा उच्चतर कार्य को निम्नतर तथा अधिक सहज-साध्य कार्य से बदल देता है।

तब फिर मशीनों के कारण उद्योग की एक शाखा से निकाला गया मज़दूरों का एक बड़ा दल उद्योग की दूसरी शाखा में कैसे खप सकता है, जब तक कि यह दूसरी शाखा निम्नतर न हो और उसमें मज़दूरी कम न हो?

कहा जाता है कि खुद मशीन बनाने के उद्योग में जो मज़दूर काम करते हैं, वे इस नियम के अपवाद हैं। कहा जाता है कि उद्योग में जब मशीनों की माँग और उनका इस्तेमाल बढ़ता है, तब लाज़िमी तौर पर मशीनों की संख्या में और नतीजतन: मशीनों के उत्पादन में बढ़ती होती है और नतीजतन: मशीन बनाने के उद्योग में अधिक मज़दूरों को नौकर रखा जाता है। और यह भी दावा किया जाता है कि उद्योग की इस शाखा में काम करनेवाले मज़दूर निपुण और यहाँ तक कि पढ़े-लिखे होते हैं।

वैसे तो पहले भी यह दावा केवल आधा सच था, लेकिन 1840 के बाद से तो इसमें सच्चाई का लेश भी नहीं रह गया है, क्योंकि तब से मशीन बनाने के उद्योग में ठीक उसी प्रकार अधिकाधिक नयी और विभिन्न प्रकार का काम करनेवाली मशीनों का प्रयोग होने लगा है, जिस प्रकार सूत तैयार करने के उद्योग में होता है। और मशीन बनाने के कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूर अत्यन्त पेचीदा मशीनों के सामने स्वयं ग़ैर-पेचीदा मशीनों की ही भूमिका अदा कर सकते हैं।

लेकिन मशीन के कारण जो आदमी नौकरी से निकाल दिया गया है, उसकी जगह पर कारख़ाना सम्भवत: तीन बच्चों और एक औरत को नौकर रख लेता है! क्या उस मज़दूर की मज़दूरी का इतना होना ज़रूरी नहीं था कि उससे तीन बच्चों और एक औरत का भरण-पोषण हो सके? क्या न्यूनतम मज़दूरी का इतना होना ज़रूरी नहीं था कि उससे वंश की रक्षा और वृद्धि हो सके? तब फिर पूँजीपतियों के प्रिय फिकरों से क्या सिद्ध होता है? इससे अधिक और कुछ नहीं कि एक मज़दूर परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए अब पहले से चौगुने मज़दूरों को अपना जीवन खपाना होगा।

पूरी बात को एक बार फिर संक्षेप में कह दें : उत्पादक पूँजी जितनी ज़्यादा बढ़ती है, उतना ही श्रम-विभाजन और मशीनों का प्रयोग बढ़ता जाता है। श्रम-विभाजन और मशीनों का प्रयोग जितना अधिक बढ़ता है, उतनी ही मज़दूरों के बीच चलनेवाली होड़ बढ़ती और उनकी मज़दूरी घटती है।

इसके अलावा, मज़दूर वर्ग में समाज के अधिक ऊँचे स्तरों से भी बहुत-से रंगरूट भर्ती हो जाते हैं। छोटे-छोटे उद्योगपतियों और छोटे किरायाजीवियों की एक बड़ी संख्या को मज़दूरों की पाँतों में धकेल दिया जाता है और उनके सामने इसके सिवा और कोई चारा नहीं रहता है कि मज़दूरों के साथ वे भी आग्रह के साथ अपना हाथ फैलायें। इस प्रकार काम की याचना करनेवाले इन बढ़े हुए हाथों का जमघट दिन-ब-दिन घना होता जाता है, जबकि ये हाथ निरन्तर दुबले होते जाते हैं।

यह बात स्वत: सिद्ध है कि जिस होड़ में कामयाब होने की पहली शर्त यह है कि अधिकाधिक बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाये, अर्थात उद्योगपति छोटा न हो, बल्कि बड़ा हो, उस होड़ में छोटा उद्योगपति मैदान में नहीं ठहर सकता।

पूँजियों की संख्या और आकार में जितनी बढ़ती होती है उतनी ही सूद की दर कम होती जाती है; अत: अब छोटा किरायाजीवी अपने सूद पर ज़िन्दा नहीं रह सकता और उसे उद्योग के क्षेत्र में कूदना पड़ता है और इस प्रकार वह छोटे उद्योगपतियों और अन्ततोगत्वा सर्वहारा वर्ग के उम्मीदवारों की संख्या बढ़ाता है—निश्चय ही इन सब बातों को और समझाने की आवश्यकता नहीं है।

अन्तिम बात यह है कि चूँकि पूँजीपतियों को, ऊपर बतायी हुई क्रिया के कारण, पहले से विद्यमान उत्पादन के विराट साधनों का अधिकाधिक बड़े पैमाने पर प्रयोग करने के लिए और इसके लिए कर्ज़ के सभी साधनों को गतिशील करने के लिए बाध्य होना पड़ता है, इसलिए उन औद्योगिक भूचालों की संख्या भी तदनुरूप बढ़ती जाती है, जिनमें वाणिज्य-जगत के लिए अपने को कायम रखने के लिए इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं रह जाता कि सम्पदा के एक भाग की, उत्पादन के एक भाग की और यहाँ तक कि उत्पादक शक्तियों के एक भाग की भी वह पाताल लोक के देवताओं को सन्तुष्ट करने के वास्ते आहुति दे दे। साराँश यह कि संकट बढ़ते जाते हैं। वे पहले से अधिक जल्दी-जल्दी आने लगते हैं और उनकी भयंकरता और भी बढ़ जाती है, और किसी कारण नहीं तो इस कारण कि जैसे-जैसे उत्पादन का परिमाण और फलत: नये और अधिकाधिक बड़े बाज़ारों की आवश्यकता बढ़ती है, वैसे-वैसे विश्व-बाज़ार अधिकाधिक सिकुड़ता जाता है और शोषण करने के लिए उपलब्ध बाज़ारों की संख्या अधिकाधिक घटती जाती है, क्योंकि पहले जितने भी संकट आ चुके हैं उनमें से प्रत्येक एक न एक ऐसे बाज़ार को विश्व-व्यापार के अधीन बना चुका है, जो उस वक्त तक अछूता था या जिसका शोषण केवल सतही ढंग से हुआ था। परन्तु पूँजी श्रम पर केवल जीती ही नहीं है। वह मरती है तो बर्बर और अभिजातीय महाप्रभु की तरह अपने गुलामों की लाशों को, संकटों में मर-मिटनेवाले मज़दूरों की लाशों के अम्बार को अपने साथ कब्र में लेती जाती है। इस प्रकार, हम देखते हैं: यदि पूँजी तेज़ी से बढ़ती है, तो मज़दूरों के बीच चलनेवाली होड़ उससे कहीं अधिक तेज़ी से बढ़ती है, अर्थात मज़दूर वर्ग की रोज़ी के साधन, उसके जीवन-निर्वाह के साधन अपेक्षाकृत उतने ही कम हो जाते हैं; मगर फिर भी यह बात सच है कि उजरती श्रम के लिए सबसे अनुकूल अवस्था यही है कि पूँजी की तेज़ी से बढ़ती हो।

राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित मार्क्स-एंगेल्स की रचनाएँ

1. धर्म के बारे में/मार्क्स, एंगेल्स 100.00
2. सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में चुने हुए उद्धरण/मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन 15.00
3. मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ /जी. प्लेख़ानोव 30.00
4. कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र / मार्क्स-एंगेल्स 20.00
5. साहित्य और कला/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
6. फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष/कार्ल मार्क्स 40.00
7. फ़्रांस में गृहयुद्ध/कार्ल मार्क्स 20.00
8. लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर / कार्ल मार्क्स 35.00
9. उज़रती श्रम और पूँजी/कार्ल मार्क्स 10.00
10. मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा / कार्ल मार्क्स 15.00
11. गोथा कार्यक्रम की आलोचना / कार्ल मार्क्स 10.00
12. लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त / फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00
13. जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति / फ़्रेडरिक एंगेल्स 30.00
14. समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक / एंगेल्स 20.00

राहुल फाउण्डेशन की पुस्तकों के मुख्य वितरक:
जनचेतना
मुख्य केन्द्र : डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
फ़ोन : 0522-2786782
ईमेल : info@janchetnabooks.org
वेबसाइट : janchetnabooks.org

कॉमरेड : एक कहानी

● मक्सिम गोर्की

इस शहर की प्रत्येक वस्तु बड़ी अद्‌भुत और बड़ी दुर्बोध थी। इसमें बने हुए बहुत-से गिरजाघरों के विभिन्न रंगों के गुम्बज आकाश की ओर सिर उठाये खड़े थे परन्तु कारख़ानों की दीवारें और चिमनियाँ इन घण्टाघरों से भी ऊँची थीं। गिरजे इन व्यापारिक इमारतों की ऊँची-ऊँची दीवारों से छिपे, पत्थर की उन निर्जीव चहारदीवारियों में इस प्रकार डूबे हुए थे जैसे मिट्‌टी और मलबे के ढेर में भद्‌दे, कुरूप फूल खिल रहे हों। और जब गिरजों के घण्टे प्रार्थना के लिए लोगों को बुलाते तो उनकी झनकारती हुई आवाज़ लोहे की छतों से टकराती और मकानों के बीच बनी लम्बी और संकरी गलियों में खो जाती।

इमारतें विशाल और अपेक्षाकृत कम आकर्षक थीं परन्तु आदमी कुरूप थे। वे सदैव नीचतापूर्ण व्यवहार किया करते थे। सुबह से लेकर रात तक वे भूरे चूहों की तरह शहर की पतली टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में इधर-से-उधर भागा करते और अपनी उत्सुक तथा लालची आँखें फाड़े कुछ रोटी के लिए तथा कुछ मनोरंजन के लिए भटकते रहते। इतने पर भी कुछ लोग चौराहों पर खड़े हो, निर्बल मनुष्यों पर यह देखने के लिए द्वेषपूर्ण निगाहें जमाये रहते कि वे सबल व्यक्तियों के सामने नम्रतापूर्वक झुकते हैं या नहीं। सबल व्यक्ति धनवान थे और वहाँ के प्रत्येक प्राणी का यह विश्वास था कि केवल धन ही मनुष्य को शक्ति दे सकता है। वे सब अधिकार के भूखे थे, क्योंकि सब गुलाम थे। धनवानों का विलासिता ग़रीबों के हृदय में द्वेष और घृणा उत्पन्न करती थीं। वहाँ किसी भी व्यक्ति के लिए स्वर्ण की झनकार से अधिक सुन्दर और मधुर दूसरा कोई भी संगीत नहीं था और इसी कारण वहाँ का हरेक आदमी दूसरे का दुश्मन बन गया था। सब पर क्रूरता का शासन था।

कभी-कभी सूर्य उस शहर पर चमकता परन्तु वहाँ का जीवन सदैव अन्धकारपूर्ण रहता और मनुष्य छाया की तरह दिखायी देते। रात होने पर वे असंख्य चमकीली बत्तियाँ जलाते परन्तु उस समय भूखी औरतें पैसों के लिए अपना कंकालवत शरीर बेचने को सड़कों पर निकल आतीं। विभिन्न प्रकार के सुगन्धित भोजनों की सुगन्धि उन्हें अपनी ओर खींचती और चारों ओर भूखे मानव की भूखी आँखें, चुपचाप चमकने लगतीं। नगर के ऊपर दुख और विषाद की एक धीमी कराहट, जो ज़ोर से चिल्लाने में असमर्थ थी, प्रतिध्वनित होकर मँडराने लगती।

जीवन नीरस और चिन्ताओं से भरा हुआ था। मानव एक-दूसरे का दुश्मन था और हर इन्सान ग़लत रास्ते पर चल रहा था। केवल कुछ व्यक्ति ही यह अनुभव करते थे कि वे ठीक मार्ग पर हैं परन्तु वे पशुओं की तरह रूखे और क्रूर थे। वे दूसरों

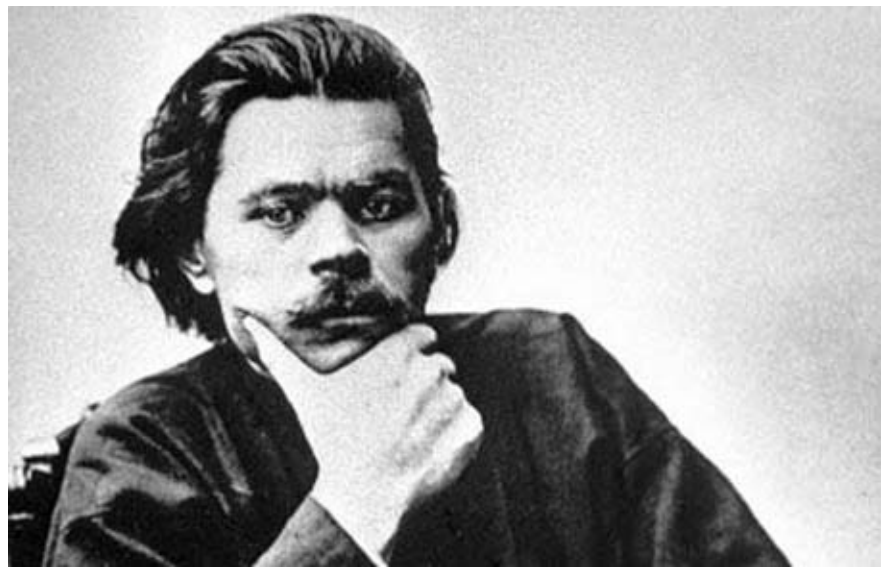

स अधिक भयानक और कठोर थ...

हरेक जीना चाहता था परन्तु यह कोई नहीं जानता था कि कैसे जिये। कोई भी अपनी इच्छाओं का अनुसरण स्वतन्त्र रूप से करने में समर्थ नहीं था। भविष्य की ओर बढ़ा हुआ प्रत्येक क़दम उन्हें पीछे मुड़कर उस वर्तमान की ओर देखने के लिए बाध्य कर देता था, जो एक लालची राक्षस के शक्तिशाली और क्रूर हाथों द्वारा मनुष्यों को अपने रास्ते पर आगे बढ़ने से रोक देता और अपने चिपचिपे आलिंगन के जाल में फाँस लेता।

मनुष्य जब ज़िन्दगी के चेहरे पर कुरूप दुर्भाग्य की रेखाएँ देखता तो कष्ट और आश्चर्य से विजड़ित हो निस्सहाय के समान ठिठक जाता, ज़िन्दगी उसके हृदय में अपनी हज़ारों उदास और असहाय आँखों से झाँकती, और निश्शब्द उससे प्रार्थना करती जिसे सुन भविष्य की सुन्दर आकांक्षाएँ उसकी आत्मा में मर जातीं और मनुष्य की नपुंसकता की कराहट, उन दुखी और दीन मनुष्यों की कराह और चीख़-पुकारों के लयहीन संगीत में डूब जाती जो ज़िन्दगी के शिकंजे में पड़े तड़फड़ा रहे थे।

वहाँ सदैव नीरसता और उद्विग्नता तथा कभी-कभी भय का वातावरण छाया रहता और वह अन्धकारपूर्ण अवसाद में लिपटा नगर अपने एक से विद्रोही पत्थरों के ढेर को लिए जो मन्दिरों को कलंकित कर रहे थे। मनुष्यों को एक कारागृह के समान घेरे तथा सूर्य की किरणों को ऊपर ही ऊपर लौटाते हुए, चुपचाप खड़ा था।

वहाँ जीवन के संगीत में क्रोध और दुख की चीख़, छिपी हुई घृणा की एक धीमी फुसकार, क्रूरता का भयभीत करने वाला कोलाहल और हिंसा की भयंकर पुकार भरी हुई थी।

2

दुख और दुर्भाग्य के अवसादपूर्ण कोलाहल के बीच लालच और इच्छाओं के दृढ़ बन्धन में जकड़े, दयनीय गर्व की कीचड़ में फँसे थोड़े-से एकाकी स्वप्नदृष्टा उन झोंपड़ियों की ओर चुपचाप, छिपकर चले जा रहे थे जहाँ वे निर्धन व्यक्ति रहते थे जिन्होंने नगर की समृद्धि को बढ़ाया था। ातरस्कृत आर उपाक्षत हात हुए भा मानव में पूर्ण आस्था रख वे विद्रोह की शिक्षा देते थे। वे दूर प्रज्वलित सत्य की विद्रोही चिनगारियों के समान थे। वे उन झोंपड़ियों में अपने साथ छिपाकर एक सादे परन्तु उच्च सिद्धान्त की शिक्षा के फल देने वाले बीज लाये थे और कभी अपनी आँखों में कठोरता की ठण्डी चमक भरकर और कभी सज्जनता और प्रेम द्वारा उन गुलाम मनुष्यों के हृदय में इस प्रकाशवान प्रज्वलित सत्य की जड़ रोपने का प्रयत्न करते, उन मनुष्यों के हृदय में, जिन्हें क्रूर और लालची व्यक्तियों ने अपने लाभ के लिए अन्धे और गूँगे हथियारों में बदल दिया था।

और ये अभागे, पीड़ित मनुष्य अविश्वासपूर्वक इन नवीन शब्दों के संगीत को सुनते एक ऐसे संगीत को जिसके लिए उनके क्लान्त हृदय युगों से प्रतीक्षा कर रहे थे। धीरे-धीरे उन्होंने अपने सिर उठाये और अपने को उन चालाकी से भरी हुई झूठी बातों के जाल से मुक्त कर लिया जिसने उनके शक्तिशाली और लालची अत्याचारियों ने उन्हें फँसा रखा था।

उनके जीवन में, जिसमें उदासी से भरा हुआ दमित असन्तोष व्याप्त था, उनके हृदयों में जो अनेक अत्याचार सहकर विषाक्त बन चुके थे, उनके मस्तिष्क में जो शक्तिशालियों की धूर्ततापूर्ण चतुरता से जड़ हो गया था – उस कठोर और दीन अस्तित्व में जो भयंकर अत्याचारों से सूख चुका था – एक सीधा सा दीप्तिमान शब्द व्याप्त हो उठा :

"कॉमरेड!"

यह शब्द उनके लिए नया नहीं था। उन्होंने इस सुना था और स्वयं भी इसका उच्चारण किया था। परन्तु तब तक इसमें भी वही रिक्तता और उदासी भरी हुई थी जो ऐसे ही अन्य परिचित और साधारण शब्दों में भरी रहती है जिन्हें भूले जाने से कोई नुकसान नहीं होता।

परन्तु अब इसमें एक नयी झंकार थी... सशक्त और स्पष्ट झंकार। एक नये अर्थ का संगीत व्याप्त था और एक हीरेक के समान कठोर चमक और दिगन्तव्यापी ध्वनि थी।

उन्होंने इसे अपनाया और इसका उच्चारण किया...सावधानी से नम्रतापूर्वक और इसे अपने हृदय से इतने स्नेहपूर्वक चिपटा लिया जैसे माता अपने बच्चे को पालने में झुलाती है।

और जैसे-जैसे इस शब्द की जाज्वल्यमान आत्मा के भीतर प्रविष्ट होते गये वह उन्हें उतना ही अधिक उज्ज्वल और सुन्दर दिखायी देता गया।

"कॉमरेड!" उन्होंने कहा।

और उन्होंने अनुभव किया कि यह शब्द सम्पूर्ण संसार को एक सूत्र में संगठित करने के लिए, सब मनुष्यों को आज़ादी की सबसे ऊँची चोटी तक उठा उन्हें नये बन्धनों में बाँधने के लिए – एक दूसरे का सम्मान करने के लिए तथा मनुष्य को स्वतन्त्रता के बन्धन में लिये हुए – इस संसार में आया है।

जब इस शब्द ने गुलामों के हृदय में जड़ जमा ली तब वे गुलाम नहीं रहे और एक दिन उन्होंने शहर और उसके शक्तिशाली शासकों से पुकारकर कहा –

"बस, बहुत हो चुका!"

इससे जीवन रुक गया क्योंकि ये लोग ही अपनी शक्ति से इसका संचालन करते थे – केवल यही लोग, और कोई नहीं। पानी बहना बन्द हो गया, आग बुझ गयी, नगर अन्धकार में डूब गया और शक्तिशाली लोग बच्चों के समान असहाय हो उठे।

अत्याचारियों की आत्मा में भय समा गया। अपने ही मल-मूत्र की दम घोंटने वाली दुर्गन्ध से व्याकुल हो उन्होंने विद्रोहियों के प्रति अपनी घृणा का गला घोंट दिया और उनकी शक्ति को देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये।

भूख का पिशाच उनका पीछा करने लगा और उनके बच्चे अन्धकार में आर्त स्वर से रोने लगे।

घर और गिरजे अवसाद में डूब गये और पत्थर और लोहे के क्रूर अट्‌टहास में घिरी हुई सड़कों पर मृत्यु की-सी भयावनी निस्तब्धता छा गयी। जीवन गतिहीन हो गया क्योंकि जिस शक्ति ने इसे उत्पन्न किया था वह अब अपने अस्तित्व के प्रति सजग हो उठी थी और गुलाम मनुष्य ने अपनी इच्छा को प्रकट करने वाले चमत्कारपूर्ण और अजेय शब्द का पा लिया था। उसने अपने को अत्याचार से मुक्त कर अपनी शक्ति को, जो विधाता की शक्ति थी, पहचान लिया था।

शक्तिशालियों के लिए वे दिन दूर न थे क्योंकि वे लोग अपने को इस जीवन का स्वामी समझते थे। वह रात हज़ार रातों के समान थी, दुख के समान गहरी। मुर्दे के समान उस नगर में चमकने वाली बत्तियाँ अत्यन्त धूमिल और अशक्त थीं। वह नगर राक्षस जिसने मनुष्यों का रक्त चूस लिया था अपनी सम्पूर्ण कुरूपता को लेकर उनके

(पेज 15 पर जारी)

(पेज 14 से आगे)

सामने खड़ा हो गया था – पत्थर और काठ के एक दयनीय ढेर के समान। मकानों की अँधेरी खिड़कियाँ भूखी और दुखी-सी सड़क की ओर झाँक रही थीं जहाँ जीवन के सच्चे स्वामी हृदय में एक नया उत्साह लिये चल रहे थे। वे भी भूखे थे, वास्तव में दूसरों से अधिक भूखे, परन्तु उनकी यह भूख की वेदना उनकी परिचित थी! उनका शारीरिक कष्ट उन्हें इतना असह्य नहीं था जितना कि जीवन के उन स्वामियों को। न इसने उनकी आत्मा में प्रज्वलित उस ज्वाला को ही कम किया था। वे अपनी शक्ति का परिचय पाकर उत्तेजित हो रहे थे। आने वाली विजय का विश्वास उनकी आँखों में चमक रहा था।

वे नगर की सड़कों पर घूम रहे थे जो उनके लिए एक उदास, दृढ़ कारागृह के समान थीं। जहाँ उनकी आत्मा पर असंख्य चोंटें पहुँचायी गयी थीं। उन्होंने अपने परिश्रम के महत्त्व को देखा और इसने उनको जीवन का स्वामी बनने के पवित्र अधिकार के प्रति सजग बना दिया, जीवन के नियम बनाने वाला तथा उसे उत्पन्न करने वाला। और फिर एक नयी शक्ति के साथ, एक चकाचौंध उत्पन्न कर देने वाली चमक के साथ, सबको संगठित करने वाला वह जीवनदायी, शब्द गूँज उठा।

"कॉमरेड!"

यह शब्द वर्तमान के झूठे शब्दों के बीच भविष्य के सुखद सन्देश के समान गूँज उठा, जिसमें एक नया जीवन सबकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह जीवन दूर था या पास? उन्होंने महसूस किया कि वे ही इसका निर्णय करेंगे। वे आज़ादी के पास पहुँच रहे थे और वे स्वयं ही उसके आगमन को स्थगित करते जा रहे थे।

3

उस वेश्या ने भी जो कल एक आधे जानवर के समान थी और गन्दी गलियों में थकी हुई इस बात का इन्तज़ार करती रहती थी कि कोई आये और दो पैसे देकर उसके सूखे ठठरी के समान शरीर को ख़रीद ले, उस शब्द को सुना परन्तु मुस्कराते हुए परेशान-सी होकर उसने इसका उच्चारण करने का साहस किया। एक आदमी उसके पास आया, उनमें से एक आदमी जिन्होंने इससे पहले इस रास्ते पर क़दम नहीं रखा था और उससे इस प्रकार बोला जैसे कोई अपने भाई से बोलता है:

"कॉमरेड!" उसने कहा।

वह इस प्रकार मधुरता और लज्जापूर्वक हँसी जिससे अत्यधिक प्रसन्नता के कारण रो न उठे। उसके दुखी हृदय ने इससे पूर्व इतनी प्रसन्नता का अनुभव कभी नहीं किया था। आँसू, एक पवित्र और नवीन सुख के आँसू, उसकी उन आँखों में चमकने लगे जो कल तक पथरायी हुई और भूखी निगाह से संसार को घूरा करती थीं। परित्यक्तों की, जिन्हें संसार के श्रमिकों की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया गया था, यह प्रसन्नता, नगर की सड़कों पर चारों ओर चमकने लगी और नगर के घरों की धुँधली आँखें इसे बढ़ते हुए द्वेष और क्रूरता से देखने लगी।

उस भिखारी ने भी जिसे कल तक बड़े आदमी, उससे पीछा छुड़ाने के लिएएक पैसा फेंक दिया करते थे और ऐसा करके यह समझते थे कि आत्मा को शान्ति मिलेगी, यह शब्द सुना। यह शब्द उसके

लिए पहला भाख क समान था ाजसन उसके ग़रीब, निर्धनता से नष्ट होते हुए हृदय को प्रसन्नता और कृतज्ञता से भर दिया था।

वह ताँगेवाला, एक छोटा सा भद्दा आदमी, जिसके ग्राहक उसकी पीठ में इसलिए घूँसे मारते थे कि जिससे उत्तेजित होकर वह अपने भूखे, टूटे शरीर वाले टट्टू को तेज़ चलाने के लिए हण्टर फटकारे। वह आदमी घूँसे खाने का आदी था। पत्थर की सड़क पर पहियों से उत्पन्न होने वाली खड़खड़ाहट की ध्वनि से जिसका दिमाग़ जड़ हो गया था उसने भी ख़ूब अच्छी तरह से मुस्कराते हुए एक रास्ता चलने वाले से कहा :

"ताँगे पर चढ़ना चाहते हो...कॉमरेड?"

यह कहकर, इस शब्द की ध्वनि से भयभीत होकर उसने घोड़े को तेज़ चलाने के लिए लगाम सम्हाली और उस राहगीर की तरफ़ देखा। वह अब भी अपने चौड़े, लाल चेहरे से मुस्कराहट दूर करने में असमर्थ था।

उस राहगीर ने प्रेमपूर्वक उसकी ओर देखा और सिर हिलाते हुए बोला :

"धन्यवाद, कामरड! मुझ ज़्यादा दूर नहीं जाना है।"

अब भी मुस्कराते और प्रसन्नता से अपनी आँखें झपकाते वह ताँगेवाला अपनी सीट पर मुड़ा और सड़क पर खड़खड़ाहट का तेज़ शोर मचाते हुए चला गया।

फुटपाथों पर आदमी बड़े-बड़े झुण्डों में चल रहे थे और चिनगारी के समान वह महान शब्द, जो संसार को संगठित करने के लिए उत्पन्न हुआ था, उन लोगों में इधर से उधर घूम रहा था।

"कॉमरेड!"

एक पुलिस का आादमी – गलमुच्छेवाला, गम्भीर और महत्त्वपूर्ण, एक झुण्ड के पास आया, जो सड़क के किनारे व्याख्यान देने वाले वृद्ध मनुष्य के चारों ओर इकट्ठा हो गया था। कुछ देर तक उसकी बातें सुनकर उसने नम्रतापूर्वक कहा।

"सड़क पर सभा करना क़ानून के ख़िलाफ़ है...तितर-बितर हो जाओ, महाशयो..."

और एक क्षण रुककर उसने अपनी आँखें नीची कीं और धीरे-से बोला :

"कॉमरेडो..."

उन लोगों के चेहरों पर, जो इस शब्द को अपने हृदय में संजोये हुए थे और जिन्होंने अपने रक्त और मांस से इसे और एकता की पुकार की तीव्र ध्वनि को बढ़ाया था – निर्माता का गर्व झलकने लगा। और यह स्पष्ट हो रहा था कि वह शक्ति, जिसे इन लोगों ने मुक्तहस्त होकर इस शब्द पर व्यय किया था, अविनाशी और अक्षय थी।

उन लोगों के ख़िलाफ़, भूरी वर्दी पहने हथियारबन्द आदमियों के अन्धे समूह एकत्रित होने लगे थे। वे चुपचाप एक-सी पंक्तियों में खड़े थे। अत्याचारियों का क्रोध उन विद्रोहियों पर जो न्याय के लिए लड़ रहे थे फट पड़ने को तैयार था।

उस नगर की टेढ़ी-मेढ़ी संकरी गलियों में अज्ञात निर्माताओं द्वारा बनायी हुई ठण्डी, ख़ामोश दीवारों के भीतर मनुष्य के भाईचारे की भावना फैल रही थी और पक रही थी।

"कॉमरेडो!"

जगह-जगह आग भड़क उठी जो एक ऐसी ज्वाला में फूट पड़ने को प्रस्तुत थी जो सारे संसार को भाईचारे की मज़बूत और उज्ज्वल भावना में बाँध देने वाली थी। वह सारी पृथ्वी को अपने में समेट लेगी और उसे सुखा डालेगी। द्वेष, घृणा और क्रूरता की भावनाओं को जलाकर राख बना देगी जो हमारे रूप को विकृत बनाती हैं। वह

सारे हृदयों को पिघलाकर उन्हें एक हृदय में – केवल एक हृदय में ढाल देगा। सरल और अच्छे स्त्री-पुरुषों का हृदय परस्पर सम्बन्धित स्वतन्त्र काम करने वालों का एक सुन्दर स्नेहपूर्ण परिवार बन जायेगा।

उस निर्जीव नगर की सड़कों पर जिसे ग़ुलामों ने बनाया था, नगर की उन गलियों में जहाँ क्रूरता का साम्राज्य रहा था, मानव में विश्वास तथा अपने ऊपर और संसार की सम्पूर्ण बुराइयों पर मानव की विजय की भावना बढ़ी और शक्तिशाली बनी।

और उस बेचैनी से भरे हुए नीरस अस्तित्व के कोलाहल में, एक दीप्तिमान, उज्ज्वल नक्षत्र के समान, भविष्य को स्पष्ट करने वाली उल्का के समान, वह हृदय को प्रभावित करने वाला सादा और सरल शब्द चमकने लगा : **"कॉमरेड!"**

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

पूँजीवादी व्यवस्था में न्याय सिर्फ अमीरों के लिए है!

इस सर्वज्ञात तथ्य को अब सुप्रीम कोर्ट के जज साहबान भी स्वीकार कर रहे हैं

कहते हैं कि यदि पैरवी अच्छी हो तो हारा हुआ मुक़दमा भी लोग जीत जाते हैं। पर यह बात अपने आपमें पूरी नहीं है। सच तो यह है कि अच्छी पैरवी के लिए पैसे खर्च करने पड़ते हैं। जो पैसा खर्च करेगा उसे ही न्याय मिलेगा। यह बात जनता तो अपने अनुभवों से जान चुकी है। किन्तु इस पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक सुप्रीम कोर्ट के बड़े-बड़े जज तक अब इस बात को स्वीकार कर रहे हैं।

विगत दिनों सुप्रीम कोर्ट के जज वी.एस. चौहान की बेंच ने न्याय प्रभावशाली व्यक्तियों ने बड़े अपराधियों द्वारा ख़रीदे जाने पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। उन्होंने कहा कि अमीर और बड़े अपराधी अपनी याचिकाओं को सुनने के लिए बड़े वक़ीलों के माध्यम से अपने मुक़दमे की तारीखें जल्दी-जल्दी लगवाते हैं, यदि हम इस तरह के मुक़दमों को ही सुनते रहेंगे तो ग़रीबों के मुक़दमों तक पहुँच ही नहीं सकते। जस्टिस चौहान ने ही कुछ दिन पहले अहमदाबाद का बहुचर्चित इशरतजहाँ फर्जी मुठभेड़ काण्ड के मुख्य आरोपी आईपीएस अधिकारी पीपी पाण्डेय की याचिका को खारिज करते हुए कहा था - हमें इस बात का दुख है कि न्यायालय का अधिकतर समय बड़े अपराधियों एवं बड़े वक़ीलों को सुनने में ही लग जाता है।

वैसे तो भारतीय संविधान कागज़ पर अमीर-ग़रीब सभी को बराबर न्याय का अधिकार देता है किन्तु सच तो यह है कि न्याय का तराजू पैसों वाले के हाथों में है। न्याय की प्रक्रिया ही ऐसी है कि ग़रीब तो पहले से ही टूटा हुआ न्यायालय पहुँचता है वह ज़िन्दगी भर न्याय की उम्मीद में न्यायालय के चक्कर लगाते-लगाते उसकी ज़िन्दगी ही ख़त्म हो जाती है। किसी ग़रीब को न्याय के लिए सुप्रीम कोर्ट तक पहुँच जाना तो अपने आपमें मुश्किल बात है। उसकी पूरी ज़िन्दगी निचली अदालतों के चक्कर काटते हुए ही ख़त्म हो जाती है। ग़रीब व्यक्ति न्याय की प्रक्रिया से बिल्कुल अनभिज्ञ रहता है। न्याय के नाम पर उससे ठगी भी आसान है। ग़रीब भी इस बात को अच्छी तरह से समझने लगा है कि न्याय के लिए बहुत ही मोटी रक़म चाहिए, उसका विश्वास न्यायपालिका से उठने लगा है। किन्तु क़ानून के शीर्ष पैरोकार इस पूँजीवादी व्यवस्था के लिए गम्भीर संकट मान रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट के पूर्व चीफ जस्टिस वी.एन. खरे मानते हैं कि विधायिका और कार्यपालिका से तो आम लोगों का विश्वास तो पहले ही उठ गया है। न्यायपालिका से भी विश्वास उठना अत्यन्त गम्भीर है। न्याय इतना मँहगा हो गया है कि ग़रीब उसे प्राप्त नहीं कर सकता है। आम आदमी के लिए न्याय है ही नहीं। ग़रीब निर्दोष होते हुए भी दोषी साबित कर दिया जाता है। बड़े वक़ील न कर पाने की हैसियत में वे ख़ुद को निर्दोष साबित नहीं कर पाते। पैसे वाले शातिर होते हैं वे पहले ही बड़े वक़ील का इन्तजाम करते हैं और हारी बाजी भी जीत लेते हैं।

सच तो यह है कि भारतीय जेलें बेगुनाहों से भरी पड़ी हैं। वे उस अपराध की सजा काट रहे हैं जो उन्होंने किया ही नहीं। वे वर्षों से काल कोठरी में इसलिए बन्द हैं कि उनको अपनी पैरवी करने के लिए बड़ा वक़ील करने में अक्षम हैं। बड़े-बड़े हत्यारे दिन-दहाड़े हत्या करने के बावजूद साक्ष्य के अभाव में बरी हो जाते हैं, बलात्कारी छूट जाते हैं। ये अपराधी पैसे के बल पर सत्ता के साथ दुरभि सन्धि बनाते हैं, पुलिस को ख़रीद लेते हैं। पुलिस उनके पक्ष में कमजोर विवेचना करती है। कमजोर विवेचना करती है इसी आधार पर उन्हें कोर्ट से जमानत मिल जाती है।

पिछले वर्ष लखनऊ के पास मोहनलाल गंज के बलसिंह खेड़ा में युवती के साथ किये गये पाशविक कृत्य एवं हत्या अपराधियों के साथ सत्ता का गँठजोड़ ताजा उदाहरण है। साक्ष्य बता रहे हैं कि उस युवती के साथ सामूहिक दरिंदगी की गई है किन्तु असली गुनहगारों को बचाने के लिए उत्तर प्रदेश की समाजवादी सरकार की पुलिस ने इस गुनाह के पीछे सिर्फ़ एक व्यक्ति को गिरफ़्तार किया। अभियुक्त से पहले पुलिस का ही अधिकारिक बयान आ चुका था कि इस वारदात को एक व्यक्ति ने ही अंजाम दिया है। पोस्टमार्टम करने वाले डाक्टरों ने ऐसी कमजोर रिपोर्ट दी कि वह अकेला नामजद अपराधी भी छूट जायेगा। क़ानून भी ख़रीद लिया जायेगा। असली अपराधी आजाद घूम रहे हैं। वे आजाद इसलिए हैं क्योंकि वे पैसे वाले हैं सत्ता के साथ हैं।

जिन्हें सीखचों के पीछे होना चाहिए वे राजसत्ता सँभाल रहे हैं

देश के पूँजीवादी समाचार पत्रों के आँकड़े ख़ुद बता रहे हैं कि आज सभी राजनीतिक दलों में कम से कम 80 प्रतिशत नेताओं पर आपराधिक मुक़दमे दर्ज हैं। किन्तु भारतीय क़ानून उन्हें अपराधी सिद्ध नहीं कर सकता। जजों को भी इन्हीं पक्ष में फैसला सुनाना मज़बूरी बन जाता है। उसूलपरस्त और ईमानदार जज भी कुछ नहीं कर पाता। जजों के ऊपर कथित प्रभावशाली लोग कैसा दबाव बनाते हैं, सुप्रीम कोर्ट में चल रहा ताजा मामला 'सहारा प्रकरण' की बेंच के जजों के वक्तव्यों से समझा जा सकता है। इस बेंच के एक प्रमुख जज केहर ने उच्चतम-न्यायालय की रजिस्ट्री विभाग को नोटिस लिखकर कहा कि सहारा से जुड़े किसी भी मामले की सुनवाई करने वाली बेंच के अवकाशप्राप्त दूसरे जज राधाकृष्ण ने कहा था कि सहारा केस की सुनवाई के दौरान उन्हें काफी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से दबावों का सामना करना पड़ रहा है। सहारा-प्रकरण न्याय के पूँजीवादी खेल का ज्वलन्त उदाहरण है। सहारा परिवार ने सालों से आम ग़रीबों की छोटी बचत से पूँजी का बड़ा साम्राज्य खड़ा कियां मीडिया, रीयल स्टेट, खुदरा व्यापार, होटल व्यवसाय में भी पूँजी लगायी। मनोरंजन जगत व राजनीतिक पार्टियों के कई बड़े नेताओं के काले धन ने भी सहारा का पूँजी बाज़ार बढ़ाने में मदद की। पर सहारा की अँधेरगर्दी भरे तौर-तरीक़ों ने पूँजी के वित्तीय बाजार में अराजकता पैदा कर दी, लाखों छोटे निवेशकों के साथ की जाने वाली धोखाधड़ी और वादाखिलाफी से उपजा आक्रोश पूँजीवादी व्यवस्था के हित में नहीं था। ऐसी स्थिति में पूँजीवादी व्यवस्था ने वित्त बाज़ार की नियामक संस्था 'सेबी' और न्यायपालिका के जरिए हस्तक्षेप किया और सहारा को नियन्त्रित करने के लिए क़ानूनी प्रक्रिया की शुरुआत की।

सहारा प्रमुख सुब्रत राय और उसके दो निवेशकों को गिरफ्तार किया तथा ग़ैर क़ानूनी ढंग से निवेशकों से जुटाई गई 24000 करोड़ रुपये वापस करने का ठोस टाइमटेबल माँगा। सुब्रत राय आज भी तिहाड़ जेल में हैं। उसे आज विदेशों में अपनी सम्पत्ति बेचने के लिए तिहाड़ जेल का शानदार, सुसज्जित वातानुकूलित कक्ष दे दिया गया। उसके पक्ष में मुक़दमे सुनाने के लिए बड़े-बड़े जजों पर दबाव बनाया गया। देश के शीर्षस्थ वक़ीलों की टीम सहारा ग्रुप को बचाने में लगी है।

लूट की इस पूँजीवादी व्यवस्था में क़ानून का फायदा भी लुटेरों को ही मिलेगा। यदि कोई ईमानदार व्यक्ति कुछ करना भी चाहे तो लूट की इस व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं ला सकता। न्याय की यह व्यवस्था ही पैसे वालों के लिए है। ग़रीब और आम आदमी को न्याय पाने के लिए इस व्यवस्था से उम्मीद करना एक भ्रम है। उसे पूँजीवादी व्यवस्था को ख़त्म करना होगा। तभी वह न्याय की उम्मीद कर सकता है।

- रामबाबू

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006